II आर्थिक समीक्षा

वर्ष 2011-12 में भारतीय अर्थव्यवस्था में मंद वृद्धि, उच्च मुद्रास्फीति तथा राजकोषीय और चालू खाते का अंतराल बढ़ता गया। खनन, विनिर्माण और निर्माण क्षेत्र ने नौ वर्ष की अवधि में अर्थव्यवस्था की गति को सर्वाधिक प्रभावित कर मंद कर दिया। देशी और विदेशी मांग में आई गिरावट की वजह से गति धीमी हो गई। गौर करने की बात है कि वृद्धि की गति धीमी होने के बावजूद वर्ष की बहुत बड़ी अवधि में मुद्रास्फीति ऊँचे स्तर पर बनी रही। इस स्थिति से निपटने के लिए रिज़र्व बैंक ने अक्तूबर 2011 तक कड़ाई का रुख अपनाया और यही स्थिति अप्रैल 2012 तक बनी रही जब वह कुछ नरमी बरतने लगा। धीमी गति से हुई वृद्धि, उच्च मुद्रास्फीति और दोहरे घाटे के बढ़ने के साथ-साथ यूरो क्षेत्र के गहराते संकट की स्थिति में समूचे विश्व के सुरक्षात्मक रवैया अपनाने के चलते इस वर्ष वित्तीय बाज़ारों और विनिमय दर पर दबाव पड़ा।

II.1.1 भारतीय अर्थव्यवस्था ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में से है, जो संकट के बाद तेज़ी से वृद्धि हासिल करने लगीं। किंतु 2011-12 की चारों तिमाहियों में आर्थिक कार्यकलापों की गति लगातार धीमी होती गई। इसकी वजह से अर्थव्यवस्था अपनी क्षमता के अनुरूप ऐसे स्तर की वृद्धि हासिल नहीं कर पाई, जहाँ अर्थव्यवस्था किसी समष्टि-आर्थिक असंतुलन पैदा किए बिना उत्पादन की अधिकतम मात्रा को हासिल कर सके। 'बिजली, गैस और जल-आपूर्ति' तथा 'सामुदायिक, सामाजिक और निजी सेवाओं' को छोड़कर अर्थव्यवस्था के सभी उप-क्षेत्र अवरुद्ध हो गए।

II.1.2 वृद्धि के धीमा होने के कई कारण रहे। इनमें से एक कारण था लगातार दो वर्ष की अवधि में मुद्रास्फीति का अभीष्ट स्तर से काफी अधिक रहना। लगातार बढ़ती मुद्रास्फीति के चलते मौद्रिक नीति को सख्त करना पड़ा। हाल के अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है कि वास्तविक ब्याज (उधार) दरों से सकल देशी उत्पाद में होने वाली वृद्धि के एक-तिहाई अंश का ही पता चलता है। मार्च 2012 की स्थिति के अनुसार वास्तविक भारित औसत उधार दरें, जो निवेश कार्यकलापों से प्रतिलोम संबंध रखती हैं, 2003-04 और 2007-08 की संकट से पहले की अवधि, जब निवेश का कार्यकलाप काफी ज़ोरों पर था, में प्रचलित दरों से कम रहीं।

II.1.3 इससे पता चलता है कि गैर-मौद्रिक कारकों ने उक्त घटनाक्रम में काफी बड़ी भूमिका निभाई और इन कारकों ने वृद्धि की गति को उस सीमा तक धीमा कर दिया जिसकी मौद्रिक नीति को सख्त बनाते समय कल्पना भी नहीं की जा सकती। यूरो क्षेत्र में आई मंदी और आम तौर पर व्याप्त अनिश्चितता ने विदेशी मांग पर असर डाला। आर्थिक सुधार को लेकर राजनीतिक एकमत न होने की स्थिति में राष्ट्र के स्तर पर नीति में व्याप्त अनिश्चितता, गवर्नेंस और भ्रष्टाचार के मुद्दों ने निवेश के माहौल को ही प्रभावित किया। बुनियादी संरचना, यथा- दूरसंचार, सड़क और बिजली आदि क्षेत्रों से संबंधित प्रमुख निवेश कारकों में संरचनागत अड़चनें पैदा होने की वजह से अवस्फीतिजन्य लागतें बढ़ने लगीं। उच्च मुद्रास्फीति ने कुल मांग और कारोबार क्षेत्र के प्रति विश्वास को डगमगा दिया।

II. वास्तविक अर्थव्यवस्था

वृद्धि में पिछले दो वर्ष में हुई काफी तेजी के बाद 2011-12 में गिरावट आई

II.1.4 वैश्विक वित्तीय संकट से शीघ्रता से निपटने और लगातार पिछले दो वर्ष में 8.4 प्रतिशत की तेज वृद्धि हासिल करने के बाद 2011-12 में सकल देशी उत्पाद 6.5 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गया, जो पिछले नौ वर्ष में दर्ज सबसे अधिक गिरावट है (परिशिष्ट सारणी 1)। यह गिरावट अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में देखी गई,

चार्ट II.1: सकल देशी उत्पाद में वृद्धि

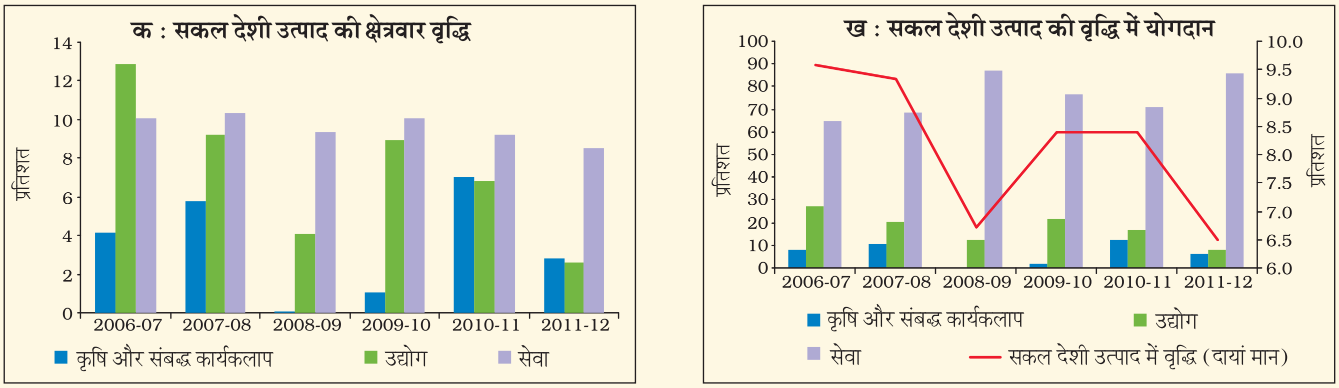

किंतु औद्योगिक क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित हुआ (परिशिष्ट सारणी 2 और चार्ट II.1क)।

II.1.5 आधारभूत प्रभाव के चलते कृषि क्षेत्र की वृद्धि में गिरावट आई, जिसके परिणामस्वरूप सकल देशी उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान आधा हो गया (चार्ट II.1 ख)। उद्योग के मामले में 'बिजली, गैस और जल आपूर्ति' में तो वृद्धि हुई, जबकि विनिर्माण क्षेत्र तथा खनन और उत्खनन के उत्पादन की मात्रा में काफी गिरावट दर्ज हुई। आर्थिक वृद्धि में औद्योगिक क्षेत्र के भारित प्रतिशत का योगदान गिरकर एकल अंक पर पहुँच गया, जो पिछले दस वर्ष की सबसे खराब स्थिति है। प्रमुख रूप से 'निर्माण' और 'व्यापार, होटल, परिवहन एवं संचार' क्षेत्रों का निष्पादन कम होने के चलते सेवा क्षेत्र की वृद्धि की गति धीमी हुई। इस धीमेपन के बावजूद सेवा क्षेत्र का प्रबल रहना वृद्धि के पथ पर और भारत के संरचनागत परिवर्तन की प्रक्रिया की एक अनूठी विशेषता है। (बॉक्स II.1)

बॉक्स II.1

संरचनागत परिवर्तन सूचकांक - विभिन्न देशों की स्थिति की तुलना

अर्थव्यवस्था का संरचनागत रूपांतरण आर्थिक विकास का परिणाम या उसके लिए एक पूर्वपिक्षा माना जाता है। आम तौर पर विभिन्न देशों में सकल देशी उत्पाद में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी के घटने के साथ-साथ उद्योग और सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी के बढ़ने के रूप में संरचनागत परिवर्तन, जो कि कालांतर में उनकी वास्तविक आय में होने वाली बढ़ोतरी से बदलता है, पाया जाता है। किंतु बीसवीं शताब्दी के मध्य अधिकांश देशों, चाहे उनकी आरंभिक स्थिति कुछ भी हो, में उद्योग क्षेत्र की हिस्सेदारी के घटने की प्रवृत्ति औंधे-U आकार के पथ पर चलती रही। परिणामस्वरूप, हाल की अवधि में कई देशों में औद्योगिक क्षेत्र की हिस्सेदारी दो शताब्दियों के पहले के स्तर के करीब पहुंच गई है। कृषि और सेवा क्षेत्रों की हिस्सेदारी में बड़े पैमाने पर कोई बदलाव नहीं आया।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में मांग और पूर्ति - दोनों पक्षों में संरचनागत परिवर्तन में अंतर्निहित कारक सक्रिय रहे। मांग की आय लोच सेवा क्षेत्र में सर्वाधिक थी, उसके बाद क्रमानुसार औद्योगिक उत्पादों और कृषिजन्य माल में अधिक रही। सकल देशी उत्पाद में हुई उत्तरोत्तर वृद्धि की वजह से कृषिजन्य उत्पादों की मांग कम हो जाती है तथा औद्योगिक माल और सेवाओं की मांग बढ़ जाती है। आपूर्ति पक्ष के अंतर्गत उत्पादन (भूमि) के नियत कारक की वजह से कृषिजन्य उत्पादों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा और इसके परिणामस्वरूप ह्रासमान सीमांत प्रतिलाभ विधि समय से पहले ही अमल में आ जाती है जिसके चलते सकल देशी उत्पाद में उनका योगदान कम हो जाता है। इसके विपरीत, औद्योगिक और सेवा क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर पूंजी और प्रौद्योगिकी के उपयोग की वजह से कालांतर में इन क्षेत्रों में उत्पादन की मात्रा बढ़ जाती है।

संरचनागत परिवर्तन सूचकांक

संरचनागत परिवर्तन सूचकांकों का प्रयोग करके अर्थव्यवस्थाओं में हुए संरचनागत परिवर्तन की मात्रा मापी जा सकती है। निरपेक्ष मूल्य मानदंड भी ऐसा ही एक संरचनागत परिवर्तन सूचकांक (नीचे दर्शाया गया है) है, जिसे मिशैली सूचकांक या स्टोइकोव सूचकांक (कॉर्टुक और सिंह, 2010) के नाम से भी जाना जाता है :

संरचनागत परिवर्तन सूचकांक = $\frac{1}{2} \sum | x_{i,t} - x_{i,t-k} |$ जहाँ $x_{i,t}$ और $x_{i,t-k}$ क्रमशः समय (t) और (t-k) पर $i^{वें}$ क्षेत्र की योजित कुल मूल्य की हिस्सेदारी के द्योतक हैं।

संरचनागत परिवर्तन सूचकांक शून्य और 100 के बीच रहता है। यदि शून्य हो तो वह संरचनागत परिवर्तन न होने का संकेत है, जबकि 100 पर हो तो संरचना के संपूर्ण कायापलट का द्योतक है। संरचनागत परिवर्तन सूचकांक तीन महत्त्वपूर्ण कारकों के प्रति संवेदनशील रहते हैं, यथा- विभिन्न क्षेत्रों के वर्गीकरण का स्तर (जितना व्यापक होगा, सूचकांक उसके अनुरूप बढ़ेगा), विश्लेषण की समय-अवधि (चूंकि संरचनागत परिवर्तन सूचकांक दो काल-खंडों में क्षेत्रवार हिस्सेदारी की तुलना करता है), उत्पादन के मूल्य का मापन (वर्तमान मूल्यों के अंतर्गत निश्चित काल-खंड में मूल्य और मात्रा दोनों में होने वाले परिवर्तनों को शामिल किया जाता है)।

(जारी....)

विभिन्न देशों की स्थिति

परिवर्तनशील संरचनागत सहसंबंधों की स्थिति के मापन हेतु 1990 से 2009 की अवधि में चुनिंदा उन्नत और उभरते बाज़ार/विकासशील देशों के संरचनागत परिवर्तन सूचकांक का वार्षिक आकलन, सकल देशी उत्पाद संबंधी आंकड़ों का प्रयोग करते हुए किया जाता है (सारणी 1)।

सारणी 1 : विभिन्न देशों में हुए संरचनागत परिवर्तन का तुलनात्मक विवरण

देश	1990-92 से 2007-09 तक की अवधि में औसत शेयर में पाया गया अंतर (प्रतिशत अंक में)			संरचनागत परिवर्तन सूचकांक
	कृषि	उद्योग	सेवा	
1	2	3	4	5
आस्ट्रेलिया	-1.6	-9.7	11.4	11.4
ब्राज़ील	-2.0	-10.8	12.8	12.8
चीन	-13.9	4.8	9.1	13.9
फ्रांस	-1.7	-6.7	8.5	8.5
जर्मनी	-0.5	-7.5	8.0	8.0
भारत*	**-11.4**	**1.8**	**9.6**	**11.4**
जापान	-0.9	-10.5	11.4	11.4
कोरिया	-5.4	-5.0	10.5	10.5
रूस	-8.3	-10.9	19.2	19.2
श्रीलंका	-13.7	3.9	9.8	13.7
दक्षिण अफ्रीका	-1.1	-6.6	7.7	7.7
यूके	-1.0	-10.1	11.1	11.1
यूएस	-0.8	-5.7	6.6	6.6

*: उद्योग क्षेत्र के अंतर्गत विनिर्माण क्षेत्र भी शामिल है।

नोट : उपादान लागत पर योजित सकल मूल्य के आंकड़े चालू अमरीकी डॉलर में दर्शाए गए हैं।

स्रोत: विश्व बैंक विकास संकेतकों के आंकड़े के आधार पर अनुमानित।

सारणी 1 से संरचनागत परिवर्तन सूचकांक और विभिन्न देशों के विकास स्तर का कोई सुस्पष्ट ढांचा सामने नहीं आया है। निश्चित काल-खंड में भारत में हुए संरचनागत परिवर्तन का परिमाण कतिपय विकसित देशों, यथा- आस्ट्रेलिया, जापान और यूके के बराबर था, जबकि कुछ हद तक कोरिया के करीब रहा। ब्राज़ील, चीन और श्रीलंका जैसे देशों के संरचनागत परिवर्तन सूचकांक से भारत के सूचकांक से अपेक्षाकृत अधिक रहे। रूस का संरचनागत परिवर्तन अन्य सभी अर्थव्यवस्थाओं से काफी अधिक रहा।

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय के आंकड़े और उसी कार्य-विधि से यह पता चला कि सुधार-पूर्व (1968-71 से 1987-90 तक) और सुधारोत्तर (1990-92 से 2009-11 तक) अवधियों में भारत में संरचनागत परिवर्तन की विस्तार-सीमा में कोई बड़ा अंतर नहीं रहा। उक्त अवधियों में संरचनागत परिवर्तन सूचकांक क्रमशः 13.6 और 13.2 रहा।

संदर्भ :

कॉर्टुक, ओ. और निर्विकार सिंह (2011), ''भारत में संरचनागत परिवर्तन और वृद्धि'', *इकोनॉमिक लेटर्स*, मार्च।

कुज़नेट्ज़, एस (1971), ''इकोनॉमिक ग्रोथ ऑफ नेशन्स : टोटल आउटपुट एंड प्रोडक्शन स्ट्रक्चर'', कैंब्रिज, हारवर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।

पपोला, टी.एस. (2005), ''इमर्जिंग स्ट्रक्चर ऑफ इंडियन इकोनॉमी : इम्प्लिकेशन्स ऑफ ग्रोइंग इंटर-सेक्टोरल इम्बैलेन्सेस'', *राष्ट्रपति का अभिभाषण, भारतीय आर्थिक संघ का 88वां सम्मेलन*, दिसंबर।

प्रोडेक्टिविटी कमीशन (1998), ''ऐस्पेक्ट्स ऑफ स्ट्रक्चरल चेंज इन ऑस्ट्रेलिया'', *रिसर्च रिपोर्ट*, गवर्नमेंट ऑफ ऑस्ट्रेल्या।

निवेश में आई गिरावट[1] ने मांग की गति धीमी कर दी

II.1.6 (निजी क्षेत्र और सरकार दोनों द्वारा) खपत में गिरावट, निवेश और विदेशी (निवल निर्यात) आदि मांगों में व्यापक कमी आने की वजह से वर्ष 2010-11 में बाज़ार मूल्यों की दृष्टि से सकल देशी उत्पाद की वृद्धि दर 9.6 प्रतिशत रही, जबकि 2011-12 में भारी गिरावट दर्ज कर वह 6.9 प्रतिशत हो गई (चार्ट II.2क)।

II.1.7 वर्ष 2011-12 की चौथी तिमाही से संबंधित व्यय-पक्ष के अंतर्गत देशी उत्पाद के आंकड़ों से यह पता चलता है कि वृद्धि 5.6 प्रतिशत दर्ज हुई और निवेश की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हुआ है। किंतु व्यय-पक्ष के अंतर्गत सकल देशी उत्पाद के आंकड़े अपनी त्रुटियों के लिए मशहूर हैं। ये कमियां इन आंकड़ों के विसंगति-युक्त व्यापक और अस्थिर ढांचे से भी मालूम पड़ती हैं। वर्ष 2011-12 में समग्र वृद्धि में 'सांख्यिकीय विसंगति' (अर्थात् आपूर्ति पक्ष के अंतर्गत सकल घरेलू उत्पाद संबंधी प्राक्कलनों, और निवल परोक्ष करों के समायोजन के बाद, व्यय पक्ष के घटकों के प्राक्कलनों के योग का अंतर) का योगदान तेज़ी से बढ़कर लगभग 42 प्रतिशत हो गया। इसका समग्र वृद्धि में योगदान सकल नियत पूंजी निर्माण के योगदान से भी काफी ज्यादा रहा (चार्ट II.2ख)।

II.1.8 व्यय पक्ष के अंतर्गत सकल देशी उत्पाद की बड़ी और अस्थिरकारी विसंगतियों के साथ-साथ कुल मांग के विभिन्न घटकों में भी बहुत से अविश्वसनीय आंकड़े रहे। उदाहरणार्थ, चौथी तिमाही में विदेशी मांग के संबंध में निवल निर्यातों को घटाकर दर्शाए गए आंकड़े धनात्मक बताये गए हैं, जो त्रुटिपूर्ण हैं, जबकि इसके विपरीत, उक्त तिमाही में अभूतपूर्व चालू खाता घाटा होने के संबंध में रिज़र्व बैंक द्वारा आंकड़ा जारी किया गया है। इसके अलावा, निवेश की गति में आए धीमापन को उजागर करने वाले काफी सारे अनुपूरक प्रमाण मौजूद हैं। कार्पोरेट परियोजनाओं, जिन्हें वित्तीय सहायता की मंजूरी दी गई, के विभिन्न चरणों के संबंध में प्राप्त सूचना से यह पता चलता है कि 2010-11 की दूसरी छमाही में कार्पोरेट नियत

[1]व्यय पक्ष के अंतर्गत सकल देशी उत्पाद के आंकड़ों की सर्वविदित कमियों के बावजूद उसका प्रयोग कुल मांग के संघटकों के लिए परोक्ष आंकड़े के रूप में किया जा रहा है।

चार्ट II.2: सकल देशी उत्पाद का व्यय पक्ष

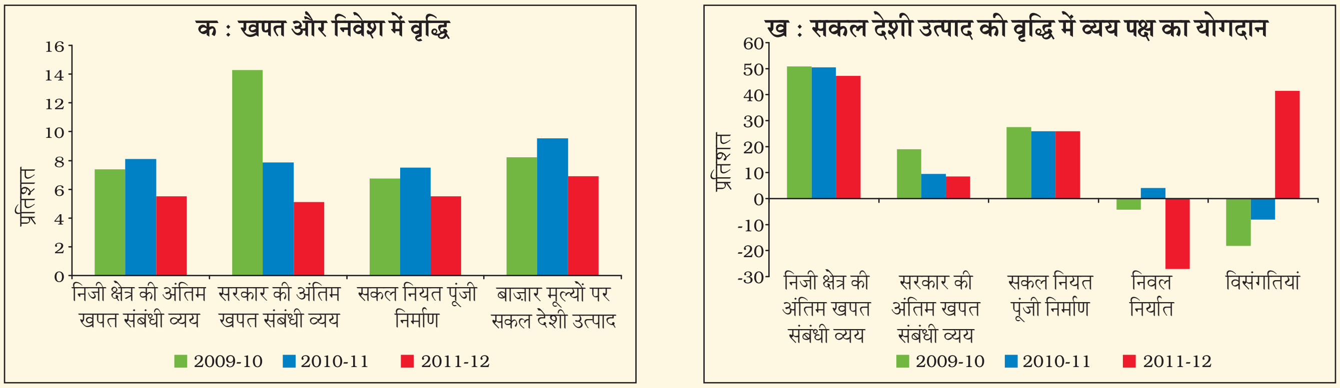

नियोजित निवेश में भारी गिरावट आई और 2011-12 में इसमें और अधिक गिरावट आई। उस समय की घटनाएं इस बात के पूरक का काम करती हैं।

II.1.9 पूंजीगत माल के उत्पादन में भी काफी कमी आई लेकिन इसका आंशिक कारण अन्य माल की जगह पूंजीगत माल का आयात किया जाना था।। अतः निवेश की मात्रा में देशी मांग के अन्य घटकों की तुलना में काफी गिरावट आई। वैश्विक अनिश्चितता ने निवेश की परिस्थिति को और बिगाड़ दिया। इस अनिश्चितता ने निवल निर्यात सरणी के माध्यम से वृद्धि की गति को धीमा कर दिया।

बचत और निवेश की घटती दरें संभावित वृद्धि को प्रभावित कर सकती हैं

II.1.10 वर्ष 2008-09 से सार्वजनिक क्षेत्र की बचत दर काफी घटने की वजह से औसत बचत दर में गिरावट आई, जिसकी भरपाई निजी क्षेत्र की बचत से नहीं हो पाई (परिशिष्ट सारणी 3 और सारणी II.1)। वैश्विक मंदी के बाद वाली अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र की औसत बचत दर में आई गिरावट के चलते राजकोषीय प्रोत्साहन के उपायों के प्रभावों और गैर-विभागीय उद्यमों के योगदान में आई कमी दिखाई पड़ती है। संकट के बाद वाली अवधि में औसत निवेश दर में भी कमी दर्ज हुई है।

II.1.11 प्रारंभिक प्राक्कलनों में यह पता चला है कि बाज़ार के सकल देशी उत्पाद में पारिवारिक क्षेत्र की निवल वित्तीय बचत 2011-12 के मौजूदा बाजार मूल्यों की दृष्टि से 7.8 प्रतिशत हो गई, जबकि यह 2010-11 में यह 9.3 प्रतिशत और 2009-10 में 12.2 प्रतिशत रही (चार्ट II.3 और परिशिष्ट सारणी 4)। आलोच्य वर्ष के दौरान पारिवारिक क्षेत्र की वित्तीय बचत दर में आई गिरावट से लघु बचतों में हुई अत्यधिक कमी और पारिवारिक क्षेत्र द्वारा बैंकों में रखी गई बचत राशियां तथा चलनिधि व जीवन निधियां काफी घटने का प्रभाव पता चलता है। इसी दौरान, 2011-12 में लगभग 9 प्रतिशत की उच्च औसत दर पर मुद्रास्फीति बने रहने की वजह से भी वित्तीय बचत पर और असर पड़ा, क्योंकि पारिवारिक क्षेत्र अपने दैनिक जीवन/जीवन शैली में खर्च का दबाव पड़ने से बचत करने में असमर्थ रहा।

सारणी ।।.1 : बचत और निवेश दर

(सकल देशी उत्पाद में प्रतिशत)

	बचत						निवेश			
	पारिवारिक क्षेत्र			निजी कंपनी	सार्वजनिक क्षेत्र	कुल	पारिवारिक क्षेत्र	निजी कंपनी	सार्वजनिक क्षेत्र	कुल*
	वित्तीय (निवल)	भौतिक	उप योग							
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
2005-06 से 2007-08 तक	11.6	11.4	23.0	8.3	3.7	35.0	11.4	15.1	8.4	34.9
2008-09 से 2010-11 तक	11.0	12.9	23.9	7.8	0.9	32.7	12.9	12.0	9.1	34.1
परिवर्तन	-0.6	1.5	0.9	-0.4	-2.7	-2.2	1.5	-3.1	0.8	-0.9

*: मूल्यवान वस्तुओं में किए गए निवेश को छोड़कर

चार्ट II.3: पारिवारिक क्षेत्र की वित्तीय बचत की स्थिति

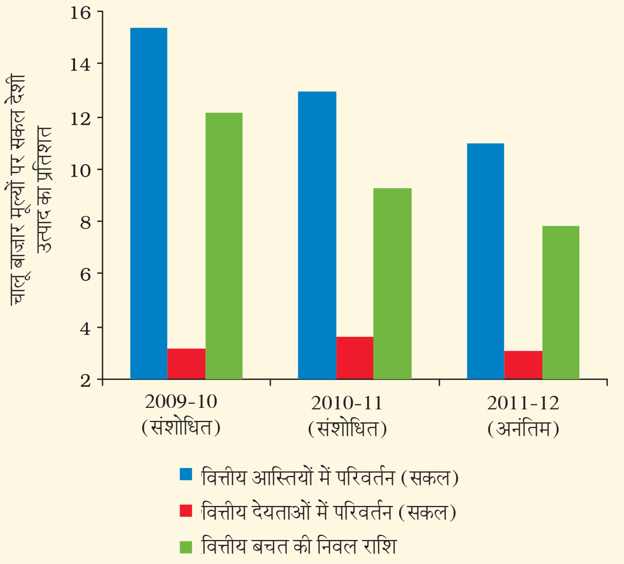

II.1.12 इसके अलावा, मुद्रास्फीति के ऊँचे स्तर पर बने रहने की वजह से बैंक जमा-राशि की वास्तविक जमा दरें अपेक्षाकृत कम रहने तथा शेयर बाज़ार के वैश्विक घटनाक्रमों से बुरी तरह प्रभावित रहने के चलते पारिवारिक क्षेत्र ने (सोने जैसी) मूल्यवान वस्तुओं में निवेश करना पसंद किया। वैश्विक संकट की अवधि के बाद बाज़ार के प्रचलित मूल्यों की दृष्टि से 2008-09 में सकल देशी उत्पाद में मूल्यवान वस्तुओं का प्रतिशत 1.3 रहा, जबकि यह 2011-12 में बढ़कर 2.8 हो गया; उक्त अवधि में निवेश (सकल पूंजी निर्माण) में मूल्यवान वस्तुओं की हिस्सेदारी क्रमिक रूप से 3.7 प्रतिशत से बढ़कर 7.9 प्रतिशत हो गई। पारिवारिक क्षेत्र ने सोने जैसी मूल्यवान वस्तुओं में निवेश करना पसंद किया, संभवतः 2011-12 में इसकी वजह से आवास जैसी भौतिक आस्तियों में किए गए निवेश की गति प्रभावित हो गई।

II.1.13 बचत दरों, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र की बचत दरों में गिरावट की प्रवृत्ति को बदलना ज़रूरी है ताकि बारहवीं योजना अवधि में उच्च वृद्धि दर को साकार करने के लिए पर्याप्त मात्रा में संसाधनों को जुटाया जा सके।

II.1.14 सकल नियत पूंजी निर्माण (निवेश) की दर लगातार घटती रही है, जो 2007-08 में 32.9 प्रतिशत रही और 2010-11 में 30.4 प्रतिशत हो गई। मौद्रिक और गैर-मौद्रिक (दोनों) कारकों की वजह से निजी कार्पोरेट क्षेत्र के संपूर्ण नियत निवेश में गिरावट आई। 2011-12 में प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों (आईपीओ) के माध्यम से जुटाई गई पूंजी की वृद्धि दर में मंद गति से हुई बढ़ोतरी से निवेश प्रभावित हुआ। 2000-01 से 2011-12 तक की अवधि में सकल देशी उत्पाद और नियत निवेश में सह-संबंध के रूप में प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावों (आईपीओ) का अनुपात 0.71 है।

II.1.15 निवेश दर लगातार घटने से उत्पादन की अनुमानित मात्रा प्रभावित हो सकती है। संरचनागत अड़चनों और उच्च मुद्रास्फीति के चलते पिछले दो वर्ष में उत्पाद की अनुमानित मात्रा में कमी आई। वर्तमान मूल्यांकन के अनुसार उत्पादन की अनुमानित वृद्धि 7.5 प्रतिशत है, जबकि इसमें हासिल दर काफी कम है, जिसके चलते उत्पादन में ऋणात्मक अंतर पैदा हो गया। चूंकि उत्पाद के अंतर और मुद्रास्फीति के बीच धनात्मक और हलका संबंध है, अतः 2009-10 और 2010-11 के दौरान धनात्मक उत्पादन अंतर की वजह से मुद्रास्फीति कम न होने की संभावना है (बॉक्स II.2)।

उच्च आधार स्तर पर पहुँचने के बाद कृषि की वृद्धि दर में कमी आई

II.1.16 वर्ष 2010-11 में अच्छा निष्पादन दर्ज करने के चलते 2011-12 में कृषि क्षेत्र में वृद्धि अपने प्रवृत्ति-स्तर के आस-पास रही (परिशिष्ट सारणी 5)। 2011 में दक्षिण-पश्चिम मानसून का स्तर सामान्य रहा, किंतु उत्तर-पूर्व मानसून में 48 प्रतिशत की गिरावट आई। इसके बावजूद कृषि क्षेत्र में प्रवृत्ति-स्तर की वृद्धि कायम रही। 2011-12 के चौथे अग्रिम प्राक्कलन के अनुसार आम तौर पर खाद्यान्नों, विशेष रूप से धान और गेहूँ का उत्पादन अब तक के सर्वाधिक स्तर पर रहने की संभावना है।

II.1.17 तथापि, संचयी वर्षा (16 अगस्त 2012 तक) दीर्घावधि औसत से 16 प्रतिशत कम रहने को देखते हुए 2012-13 में पूरे देश में दक्षिण-पश्चिम मानसून की वर्षा कम रहने की संभावना है। रिज़र्व बैंक के उत्पादन-भारित वर्षा सूचकांक के अनुसार मापित वर्षा की कमी का सूचकांक इससे भी अधिक अर्थात् 21 प्रतिशत है। दक्षिण-पश्चिम भारत में, पंजाब और हरियाणा में छिटपुट वर्षा के साथ, वर्षा की कमी सबसे अधिक अर्थात् दीर्घावधि से 25 प्रतिशत कम रहने की संभावना है। समग्र रूप में गुजरात, पश्चिमी राजस्थान, महाराष्ट्र के भाग तथा कर्नाटक में देश के 47 प्रतिशत भाग में छिटपुट/ कम वर्षा हुई।

बॉक्स II.2
क्या उत्पादन अंतराल मुद्रास्फीति का प्रमुख सूचक है?

उत्पादन अंतराल से अभिप्रेत है वास्तविक और अनुमानित उत्पादन का अंतर, जहाँ अनुमानित उत्पादन का तात्पर्य उत्पादन के ऐसे अधिकतम संभाव्य स्तर से है, जो स्थिर और निचले स्तर की मुद्रास्फीति के अनुरूप हो। बहुप्रचलित फिलिप्स वलय ढांचे में धनात्मक (ऋणात्मक) उत्पादन अंतर, जो अत्यधिक कुल मांग (आपूर्ति) का संकेत है, के परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति दर बढ़ (घट) जाती है। मुद्रास्फीति पर उत्पादन अंतराल का प्रभाव तात्कालिक हो सकता है या कालांतर में पड़ सकता है। किंतु मुद्रास्फीति को और कुछ कारक भी प्रभावित कर सकते हैं, जैसे- विलंबित मुद्रास्फीति, विनिमय दर और परोक्ष कर दर।

इस स्थिति के अलावा, उत्पादन अंतराल, जो कि 'स्पीड लिमिट' कहलाता है, में परिवर्तन होने से भी मुद्रास्फीति प्रभावित हो सकती है। इससे यह पता चलता है कि जब मांग में बढ़ोतरी की गति उत्पादन की नई निर्माण-क्षमता से भी तेज़ रहती है तो आपूर्ति में अस्थायी अड़चनें पैदा हो जाती हैं, भले ही उत्पादन अंतराल का स्तर ऋणात्मक क्यों न हो। अनुभवमूलक अध्ययनों से भारत के उत्पादन अंतराल/वृद्धि और मुद्रास्फीति के संबंध में असममिति/अरैखिकता होने के संबंध में प्रमाण मिला है (मोहंती और उनके सहयोगी, 2011)।

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में 2000-01 की पहली तिमाही से 2011-12 की चौथी तिमाही की अवधि में भारत में उत्पादन अंतराल (एच-पी फिल्टर पर आधारित अनुमानित उत्पादन) और थोक मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया (चार्ट)। यह पाया गया कि उत्पादन अंतराल ग्रैंजर ने एक दौर में थोक मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति पैदा कर दी, जो इस बात की पुष्टि करता है कि उत्पादन अंतराल में प्रमुख संकेतक होने के गुण विद्यमान हैं।

2000-01 की पहली तिमाही से 2011-12 की चौथी तिमाही की अवधि में थोक मूल्य सूचकांक वाली मुद्रास्फीति दर, उत्पादन अंतराल और एक डमी चर (अवधि-विशेष के आउटलायरों से संबंधित) पर आधारित साधारण रैखिक रेग्रेशन सांख्यिकी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गुणांक साबित हुए हैं (सारणी)। दो काल-खंडों में रहने वाली मुद्रास्फीति काफी महत्त्व रखती है। मुद्रास्फीति के पहले दौर में धनात्मक संकेत का तात्पर्य मुद्रास्फीतिकारी प्रत्याशाओं या वास्तविक मूल्य के कम न होने जैसे कारणों से मुद्रास्फीति का बने रहना है, जबकि दूसरे दौर का ऋणात्मक संकेत मुद्रास्फीति क्रम के माध्य-स्थिति में वापस आने या स्थिर रहने का सूचक है। पहले और तीसरे दौरों में उत्पादन अंतराल धनात्मक और महत्त्वपूर्ण हो गया। परिणामस्वरूप, उत्पादन अंतराल में एक प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी होने से पहली और तीसरी तिमाहियों के बाद थोक मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति में क्रमशः 0.2 और 0.3 प्रतिशत अंक की वृद्धि हो गई। साधारण रैखिक प्रवृत्ति ने गति सीमा निर्धारित करने का कोई प्रभाव नहीं पाया।

चार्ट : उत्पादन अंतराल और मुद्रास्फीति

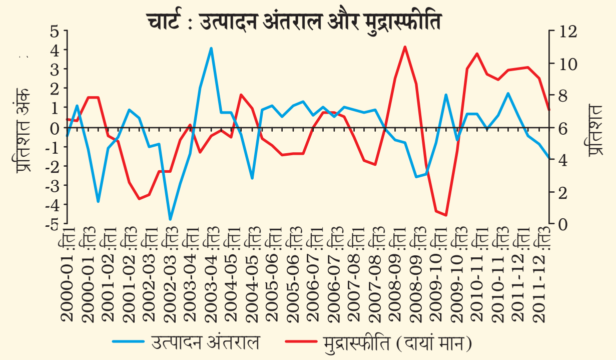

सारणी : प्राक्कलन के परिणाम

स्पष्टकारी चर	अनुमानित गुणांक	पी-मूल्य
स्थिरांक	1.96	0.00
मुद्रास्फीति (-1)	1.15	0.00
मुद्रास्फीति (-2)	-0.50	0.00
उत्पादन अंतराल (-1)	0.20	0.07
उत्पादन अंतराल (-3)	0.29	0.01
डमी चर	2.90	0.00
समायोजित आर-वर्गांकित	0.82	
लैगरेंज मल्टीप्लायर टेस्ट (लैग 3)	0.86	
प्रायिकता (एफ-सांख्यिकीय)	0.00	

द्वि-चरी वीएआर मॉडल, जिसमें उत्पादन अंतराल और थोक मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति दर (अर्थात् हेडलाइन और कोर) शामिल है, की सामान्यीकृत प्रभाव प्रतिक्रियात्मक गतिविधि से यह पता चलता है कि उत्पादन अंतराल पर एक बार मानक विचलन का प्रभाव पड़ जाने पर हेडलाइन और कोर - दोनों मुद्रास्फीति बढ़ जाती है, जो तीन तिमाही के बाद उच्चतम स्तर पर पहुंच जाती है और उसका प्रभाव 6-8 तिमाही या लगभग दो वर्ष के बाद घटना शुरू होता है।

हाल की अवधि में वृद्धि में काफी गिरावट आई है, ऐसी स्थिति में इन परिणामों से यह संकेत मिलता है कि मुद्रास्फीति, विशेष रूप से कोर मुद्रास्फीति में अगले दौर में कमी आ सकती है। किंतु इसकी गति और व्यापकता मुद्रास्फीति के कुछ निर्धारक तत्त्वों पर निर्भर करती है, जैसे- खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति बाधित होना, विश्व स्तर पर पण्य-वस्तुओं के मूल्यों में उतार-चढ़ाव और विनिमय दर का प्रभाव अंतरण तथा समग्र राजकोषीय स्थिति। वर्तमान में इनमें से कई दबावकारी तत्त्व सक्रिय हैं, जिससे आंशिक रूप में यह पता चलता है कि वृद्धि दर में गिरावट आने के बावजूद मुद्रास्फीति उच्च स्तर पर बनी रह रही है।

संदर्भ :

बाघली एम, क्रिस्टोफ केन और हेनरी फ्रेसी (2006), ''इस द इन्फ्लेशन-आउटपुट नेक्सस असिम्मैट्रिक इन द यूरो एरिया?'', बैंक्वे डी फ्रांस वर्किंग पेपर सं.140, अप्रैल

ड्वेयर ए, केथरीन लैम और अंद्रु गुर्नी (2010), ''इन्फ्लेशन एंड द आउटपुट गैप इन द यूके'', एचएम ट्रेज़री इकोनॉमिक वर्किंग पेपर सं.6, मार्च

मीयर ए (2010), ''स्टिल माइंडिंग द गैप्स - इन्फ्लेशन डाइनेमिक्स ड्यूरिंग एपिसोड्स ऑफ पर्सिस्टेंट्ली लार्ज आउटपुट गैप्स'', आईएमएफ वर्किंग पेपर डब्ल्यूपी/10/189, अगस्त

मोहंती डी, ए.बी. चक्रवर्ती, अभिमान दास और जॉइस जॉन (2011), ''इन्फ्लेशन थ्रेशोल्ड इन इंडिया : ऐन एम्पिरिकल इन्वेस्टिगेशन'' रिज़र्व बैंक वर्किंग पेपर्स, अक्तूबर

II.1.18 इसने 2012-13 में खरीफ की बुवाई को प्रभावित किया। देश की इस अवधि की सामान्य स्थिति की तुलना में 17 अगस्त 2012 तक चावल तथा खाद्येतर वस्तुओं जैसे गन्ना, कपास तथा जूट और मेस्ता की बुवाई का क्षेत्र सामान्य से अधिक है। मोटे अनाज तथा दालों की बुवाई का क्षेत्र सामान्य क्षेत्र की तुलना में क्रमशः 16 प्रतिशत तथा 12 प्रतिशत कम रहने को देखते हुए सामान्य से कुल विचलन 4 प्रतिशत है। अगस्त 2012 में मानसून की स्थिति में कुछ सुधार के होने के बावजूद मोटे अनाज तथा दलहन की बुवाई क्षेत्र में अंतर के बने रहने की संभावना है। इससे 2012-13 में कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। तथापि, अब तक (16 अगस्त 2012) के सूखे की स्थिति वर्ष 2009-10 से बेहतर लग रही है (चार्ट II.4)।

II.1.19 भारतीय मौसम विभाग (आईएमडी) ने बताया है कि मौसम के उत्तरार्द्ध में *एल निनो* की स्थिति पैदा होने की संभावना-दर 65 प्रतिशत है। वर्षा के कम रहने से केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) के अधीनस्थ 84 जलाशयों का जल स्तर प्रभावित हुआ है। यदि सितंबर महीने में होने वाली वर्षा पर्याप्त नहीं रहती है तो उससे मृदा की नमी और जलाशयों के जल स्तर प्रभावित हो सकते हैं। परिणामस्वरूप रबी उपज जोखिमग्रस्त हो सकती है।

II.1.20 यद्यपि, भारत में हाल के वर्षों में वर्षा पर कृषि उत्पादन की निर्भरता कम हुई है, तथापि, अब भी वह वर्षा पर ही अवलंबित है। देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 16 प्रतिशत भाग सूखे की चपेट में आने की आशंका है। इस क्षेत्र के अंतर्गत शुष्क, अर्ध-शुष्क और अर्ध-नम क्षेत्र शामिल हैं। कुल पैदावार क्षेत्र में वर्षा-पूरित कृषि का हिस्सा लगभग 56 प्रतिशत है। इसी प्रकार 77 प्रतिशत का दलहन क्षेत्र, 66 प्रतिशत का तिलहन क्षेत्र और 45 प्रतिशत का अनाज क्षेत्र वर्षा पर निर्भर रहता है। वर्षा पर कृषि की निर्भरता का पता इस बात से लगता है कि 2008-09 और 2009-10 में खरीफ उत्पादन में कमी हुई जब दक्षिण-पश्चिम मानसून में भारी गिरावट आई। हाल की अवधि में उत्तर-पूर्व मानसून में कमी आने से तिलहन, दलहन और धान जैसी रबी फसलों का उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित हुआ। इसके विपरीत, 2010-11 में अधिकांश खरीफ और रबी फसलों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई जब ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन वर्षा की मात्रा सामान्य स्तर से अधिक रही।

II.1.21 सरकार ने आकस्मिकता योजनाएं तैयार की हैं, जिनके अंतर्गत सभी बीजों, पशु चारे, बिजली और डीज़ल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना, एमजीएनआरईजीए के तहत अतिरिक्त मज़दूरी का आबंटन तथा राष्ट्रीय आपदा राहत कोष के अंतर्गत पर्याप्त निधि उपलब्ध कराना आदि शामिल हैं। साप्ताहिक अंतराल पर इस स्थिति की समीक्षा करने के लिए एक अंतर-मंत्रालयीन समूह का गठन किया गया है। पशु चारे, अल्पावधिक दलहनों का उत्पादन तथा तोरिया, ज्वार और चने जैसी रबी फसलों के समय से पहले रोपण के लिए नमी के संरक्षण आदि के लिए आकस्मिकता योजनाएं अमल की जा रही हैं।

खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का सामना करने के लिए ज़रूरी है नीति/परिचालन में और परिवर्तन

II.1.22 वर्तमान में भारत में खाद्यान्न स्टॉक का स्तर काफी अधिक है (जुलाई 2012 में 76.2 मिलियन टन), जिससे चालू वर्ष में मौसम से पैदा होने वाले आघात से कुछ हद तक सुरक्षा मिल रही है (परिशिष्ट सारणी 6)। इसके बावजूद दलहनों, मूँगफली और

चार्ट II.4: 2009 और 2012 में दक्षिण-पश्चिम मानसून और कृषि की स्थिति की तुलना

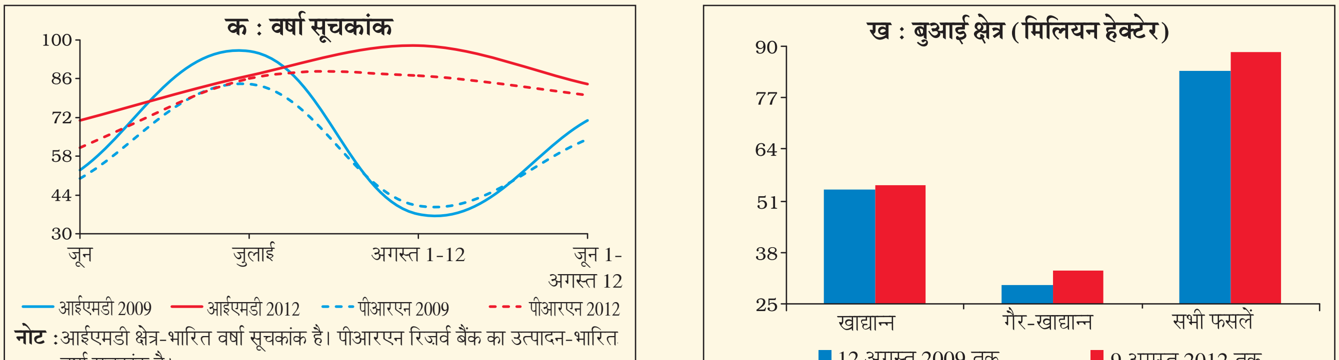

नोट : आईएमडी क्षेत्र-भारित वर्षा सूचकांक है। पीआरएन रिज़र्व बैंक का उत्पादन-भारित वर्षा सूचकांक है।

मोटे अनाजों की उपलब्धता बाधित हो सकती है। मई-जून 2012 के दौरान यूएस, चीन और रूस जैसे देश अत्यंत सूखे और गरमी की चपेट में आने से वहाँ फसलों का उत्पादन प्रभावित हो गया। अतः देश में अनाज की कमी को आयात द्वारा आसानी से पूरा करना शायद संभव नहीं हो पाएगा।

II.1.23 अभूतपूर्व स्तर पर खाद्यान्न स्टॉक होने के बावजूद खाद्य सुरक्षा चिंता की बात बनी हुई है। (प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा विधेयक 2011 के अंतर्गत) हकदारी बढ़ने की संभावना के चलते खाद्यान्नों के संबंध में खाद्य सुरक्षा और भंडारण क्षमता के अभावजन्य मुद्दे काफी बढ़ गए हैं। तथापि, बदलती भोजन शैली के मद्देनज़र प्रोटीन-प्रधान वस्तुओं, तरकारियों और फलों की आपूर्ति को बढ़ाने पर जोर देना ज़रूरी है, क्योंकि इन वस्तुओं की मांग-आपूर्ति के अंतरालों से मूल्यजन्य दबाव बढ़ने/घटने की आशंका रहती है।

II.1.24 हाल के वर्षों में खाद्यान्नों और दलहनों जैसी खाद्य वस्तुओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के स्तर में गिरावट आई है। 1990 के दशक की तुलना में 2000 के दशक में उपभोग की वस्तुओं के विविधीकरण के बावजूद खाद्यान्नों और बागबानी फसलों के उत्पादन की गति धीमी हुई है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय द्वारा किए गए 2009-10 के उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण से यह पुष्टि हुई है कि फल, तरकारी, दूध, अंडे, माँस और मछली जैसे उच्च मूल्य वाले खाद्य पदार्थों में किए जाने वाले खर्च बढ़ने की वजह से उपभोग की वस्तुओं में अनाजों की बड़ी हिस्सेदारी घट गई। आय में बढ़ोतरी होने से इन खाद्य पदार्थों की मांग में तेजी आएगी जिसके परिणामस्वरूप समस्त खाद्य और पोषण सुरक्षा के मामले में देश की तैयारी पर असर पड़ सकता है। अतः जनसंख्या की वृद्धि दर के स्तर से खाद्यान्नों सहित कृषि उत्पादन की वृद्धि दर को बढ़ाना दीर्घकालीन खाद्य सुरक्षा हासिल करने के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। हमारा देश दलहनों और तिलहनों जैसी वस्तुओं के लिए काफी हद तक आयात पर निर्भर करता है। योजना आयोग द्वारा गठित 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) से संबंधित कार्य समूह के अनुसार 2016-17 तक दलहनों और तिलहनों की मांग राष्ट्रीय स्तर पर होनी वाली आपूर्ति से क्रमशः 1-4 मिलियन टन और 18-26 मिलियन टन तक बढ़ने की संभावना है।

II.1.25 मौजूदा लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत वितरण और सुपुर्दगी व्यवस्था कारगर नहीं है और उसमें काफी ढिलाई है। साथ ही, विद्यमान भंडारण सुविधाओं का उनकी क्षमता से भी अधिक उपयोग किया जा चुका है, जिसके चलते बर्बादी होती है, अतः खाद्यान्न प्रबंधन प्रणालियों की समूची शृंखला में लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत कवरेज और पात्रता को पूरी तरह दुरुस्त करना ज़रूरी है। इसके अलावा, भंडारण क्षमता बढ़ाने और बर्बादी को कम करने के साथ-साथ नकदी अंतरण, खाद्यान्न कूपन प्रणाली और लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के डिजिटलाइज़ेशन की संभावनाओं का पता लगाने जैसे उपायों से, इस क्षेत्र की समस्याओं को काफी हद तक दूर करने में मदद मिलेगी।

प्रौद्योगिकी का विकास और प्रोटीन में निवेश - कृषि की उच्चतर वृद्धि के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण

II.1.26 कृषि क्षेत्र में आपूर्ति संबंधी अड़चनों को दूर करने के लिए प्रौद्योगिकी की उन्नति, विशेष रूप से शुष्क क्षेत्र खेती में प्रौद्योगिकी-साधित उपाय करना तथा तरकारियों, फलों, अंडों, मछली, माँस और दूध की आपूर्ति में वृद्धि करना बेहद ज़रूरी है ताकि मुद्रास्फीति को काबू में रखा जा सके। 12वीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार आगामी वर्षों में कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत की वृद्धि करना न केवल अर्थव्यवस्था की समग्र वृद्धि को बनाए रखने के लिए नितांत आवश्यक है, अपितु समान रूप से वृद्धि को हासिल करने के लिए भी ज़रूरी है। इसके लिए उत्पादकता के मौजूदा स्तर में भी काफी बढ़ोतरी करना ज़रूरी होगा। इसे साकार करने के लिए प्रौद्योगिकी का विकास करना आवश्यक है जिसके समक्ष भूमि व जल की सीमित उपलब्धता, अल्प विकसित यांत्रिकीकरण, सिंचाई सुविधाओं, बिजली के अभाव और निष्क्रिय संचार व विस्तार सेवाओं आदि के अभाव जैसे बहुत से अवरोध हैं।

II.1.27 जैव-प्रौद्योगिकी, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष अनुप्रयोग और नैनो प्रौद्योगिकी जैसी उन्नत प्रौद्योगिकी पद्धतियों तथा लो एक्स्टर्नल इनपुट सस्टेनबल एग्रीकल्चर (एलईआईएसए) तकनीकों सहित जैव खेती जैसी उन्नत प्रौद्योगिकी के साथ-साथ इंटिग्रेटेड नैचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट (आईएनआरएम) एवं इंटिग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट (आईपीएम) तकनीकों को बढ़ावा देकर,पारिस्थितिक विपत्तियां पैदा किए बिना, सतत् रूप से उत्पादकता हासिल की जा सकती है। प्राकृतिक संसाधनों का सातत्य सुनिश्चित करने, सार्वजनिक निवेश की कार्य-क्षमता को बढ़ाने तथा कृषि को उच्च मूल्य फसलों और पशुधन की ओर विविधीकृत करने में भी प्रौद्योगिकी का योगदान मिल सकता है।

II.1.28 वैश्विक औसत के अनुरूप उपज हासिल कर उत्पादकता अंतराल की भरपाई करने से और राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों/क्षेत्रों के बीच के अंतरालों को दूर करने से उच्च स्तर पर उत्पादन हासिल करने में मदद मिल सकती है। पूर्वी क्षेत्र में हरित क्रांति के लक्ष्य को व्यापक बनाने के लिए अभियान की आक्रामक स्थिति पैदा कर अपेक्षित परिणामों को हासिल किया गया है, जो इस दिशा में किया गया सार्थक प्रयास है। 2011-12 के दौरान पश्चिम बंगाल, बिहार और झारखंड में धान की उपज, उत्पादन और बुआई-क्षेत्र में काफी बढ़ोतरी दर्ज हुई है। पश्चिम बंगाल सारे देश में धान का सर्वाधिक उत्पादन करने वाले राज्य के रूप में उभर रहा है। दलहनों और तिलहनों के संबंध में उठाए गए कदमों से भी अच्छे परिणाम निकल रहे हैं।

II.1.29 प्रोटीन युक्त खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति की स्थिति में सुधार लाने के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ मुर्गीपालन, मछली पालन और डेरी फार्मिंग में बड़े पैमाने पर निवेश किया जाना ज़रूरी है। हालाँकि मुर्गीपालन के उत्पादन में तेज़ी से वृद्धि हुई है, लेकिन इसकी मांग में भी बढ़ोतरी हुई है। अतः संकर पक्षियों और अंडे देने वाली मुर्गियों के पालन को बढ़ावा देने के साथ-साथ उन्नत खाद्य अंतरण पद्धति, मुर्गी संबंधी टीकाओं और दवाइयों, पशुपालन सेवाओं तथा मुर्गीपालन संबंधी उपकरणों आदि में निवेश को प्रोत्साहित करना ज़रूरी है। विशिष्ट रोगाणु मुक्त (एसपीएफ) अंडा उत्पादन पद्धति को बढ़ावा देना ज़रूरी है। तालाब, टंकियों और जलाशय सहित गहरे समुद्र, तटीय और अंतर्देशी स्तर पर मछली पालन में भी काफी अधिक निवेश करना आवश्यक है। ट्यूना प्रसंस्करण और मछली शुष्कन केंद्रों में सरकारी नीति के समर्थन में निजी निवेश को साकार करना ज़रूरी है।

निवेश के घटते स्तर और मांग में कमी आने के बीच औद्योगिक वृद्धि में कमी

II.1.30 वर्ष 2011-12 में 2.9 प्रतिशत की औद्योगिक वृद्धि दर्ज हुई जबकि पिछले वर्ष 8.2 प्रतिशत की वृद्धि हासिल हुई थी (परिशिष्ट सारणी 7)। 2011-12 के पूर्वार्द्ध में एक ओर औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में 5.1 प्रतिशत की मामूली वृद्धि हुई तो दूसरी ओर वर्ष के उत्तरार्द्ध में यह 0.9 प्रतिशत पर आ गई। देशी व विदेशी - दोनों स्तरों पर मांग में बढ़ोतरी, ब्याज दरों के बढ़ने, खपत, विशेष रूप से ब्याज दर से प्रभावित होने वाली पण्य-वस्तुओं पर किए गए व्यय में गिरावट, कारोबारी विश्वास घटने और वैश्विक स्तर पर आर्थिक अनिश्चितता की वजह से धीमी गति से वृद्धि हुई।

II.1.31 पूंजीगत माल के उत्पादन में अस्थिरता के चलते औद्योगिक वृद्धि की गति धीमी हुई। 2011-12 में रिज़र्व बैंक द्वारा छोटा करके निर्मित किए गए औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में 4.8 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। इस सूचकांक का निष्पादन समग्र औद्योगिक उत्पादन से बेहतर रहा। इस छोटे औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में (कुल 399 मदों में से) कतिपय ऐसी मदों को समाविष्ट नहीं किया गया है जो सर्वोच्च 2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करने वाली और सर्वाधिक 2 प्रतिशत की गिरावट दर्ज करने वाली थीं तथा जिनका भारांक कुल औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में 96.0 प्रतिशत था। किंतु 2011-12 की तिमाहियों में क्रमिक रूप से छोटे औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में उल्लेखनीय वृद्धि हुई (चार्ट II.5)। मुख्य रूप से पूंजीगत माल के उत्पादन में 20 प्रतिशत की कमी आने की वजह से 2012-13 की पहली तिमाही में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में 0.1 की गिरावट दर्ज हुई। 2011-12 की चौथी तिमाही में छोटे औद्योगिक उत्पादन सूचकांक और औद्योगिक उत्पादन सूचकांक, जिसमें पूंजीगत माल शामिल नहीं है, की वृद्धि दर बेहतर रही।

II.1.32 वर्ष 2011-12 में बिजली को छोड़कर अन्य सभी उप-क्षेत्रों पर औद्योगिक उत्पादन में आई गिरावट का प्रभाव दिखाई पड़ा। विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत 6 उप-क्षेत्रों के उत्पादन स्तर में कमी आई, जबकि 6 उप-क्षेत्रों में 10.0 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई। 2011-12 में खनन उप-क्षेत्र में 2.0 प्रतिशत की गिरावट आई। मुख्य रूप से कोयला खनन को प्रभावित करने वाले विनियामक

चार्ट II.5: औद्योगिक वृद्धि
(वर्ष-दर-वर्ष)

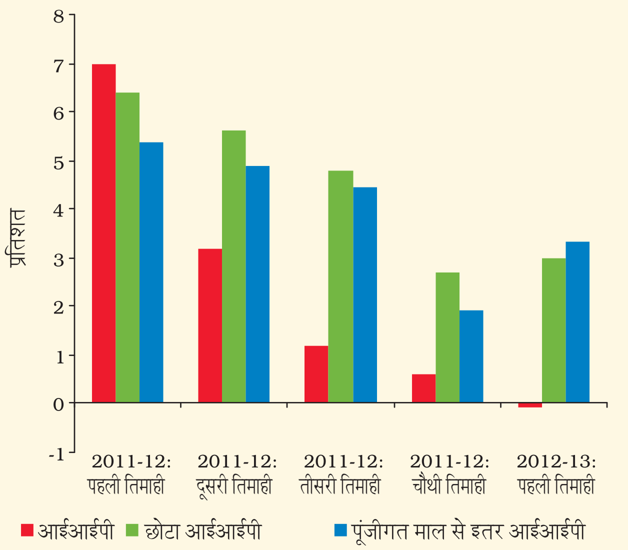

और पर्यावरण-संबंधी मुद्दों तथा कृष्णा-गोदावरी बेसिन से प्राकृतिक गैस के कम उत्पादन के चलते खनन उप-क्षेत्र में गिरावट दर्ज हुई। तथापि, 2011-12 में मामूली स्तर पर दक्षिण-पश्चिम वर्षा से अधिक मात्रा में उत्पन्न पनबिजली के सहारे बिजली क्षेत्र का कार्य-निष्पादन बेहतर रहा, जिसमें 8.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई (चार्ट ।।.6क)।

II.1.33 आलोच्य वर्ष में निवेश की स्थिति अच्छी नहीं रही जिसके चलते पूंजीगत और मध्यवर्ती माल की वृद्धि में गिरावट आई। आम तौर पर देश में प्रयुक्त पूंजीगत माल में निर्यातित पूंजीगत माल का प्राधान्य है और अनुभवमूलक परीक्षणों में यह पुष्टि हुई कि निर्यातित वस्तुएं पूंजीगत माल के उत्पादन में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। 2011-12 में पूंजीगत माल के उत्पादन में कमी होने के बावजूद बड़े पैमाने पर निर्यात दर्ज हुआ है। यह पूंजीगत माल के उत्पादन में प्राप्त होने वाले लाभ के अपेक्षाकृत घटने का संकेत हो सकता है। ब्याज दर संवेदनशीलता के चलते टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की वृद्धि दर कम रही (चार्ट ।।.6ख)। 2011-12 में औद्योगिक वृद्धि में बुनियादी माल[2] का 75 प्रतिशत का योगदान रहा।

राष्ट्रीय औद्योगिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले वैश्विक कारक

II.1.34 जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मुख्य रूप से औद्योगिक क्षेत्र के खराब कार्य-निष्पादन के चलते 2011-12 में अर्थव्यवस्था की समग्र वृद्धि में गिरावट दर्ज हुई। इसके पीछे अंतरराष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर के कई कारक हो सकते हैं। 2010-11 की शुरुआत से अब तक चल रही मंदी का दौर ऐसी स्थिति में पैदा हुआ है जब यूएस और यूरोपीय देशों की आर्थिक परिस्थिति खराब होने लगी है। 2008-09 में औद्योगिक वृद्धि की गति कम करने में वैश्विक कारकों का भी कुछ हद तक योगदान रहा, जैसे- यूरो क्षेत्र का वित्तीय संकट, अन्य औद्योगीकृत देशों में मंद वृद्धि और कच्चे तेल की ऊँची कीमतें आदि। इसी अवधि में मलेशिया, दक्षिण कोरिया और ब्राज़ील जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं का कार्य-निष्पादन भी खराब रहा।

II.1.35 मौद्रिक नीति और वैश्विक वृद्धि के प्रभाव पर किए गए एक अनुभवमूलक मूल्यांकन से यह पता चला कि आधार अवधि में उद्योग क्षेत्र की वास्तविक भारित औसत उधार दर में एक प्रतिशत अंक की वृद्धि होने पर एक वर्ष की अवधि में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में औसतन 0.6 प्रतिशत अंक की गिरावट आती है, जबकि आधार अवधि में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में एक प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी होने से इतनी ही अवधि में देशी औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में औसत रूप से 0.7 प्रतिशत अंक की वृद्धि होती है। इन प्राक्कलनों से यह स्पष्ट होता है कि मौद्रिक नीति संबंधी उपायों और वैश्विक वृद्धि के सहसंबंधों से देशी उद्योग की वृद्धि दर प्रभावित होती है।

औद्योगिक वृद्धि के पुनरुज्जीवन के लिए प्रमुख उद्योगों के सामने आने वाली अड़चनों को दूर करना

II.1.36 वर्ष 2011-12 में कोयला और प्राकृतिक गैस जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में आई संरचनागत अड़चनों की वजह से औद्योगिक क्षेत्र का समग्र कार्य-निष्पादन बाधित हो गया। वर्ष 2011-12 में

चार्ट II.6: औद्योगिक वृद्धि -वर्गीकरण के अनुसार

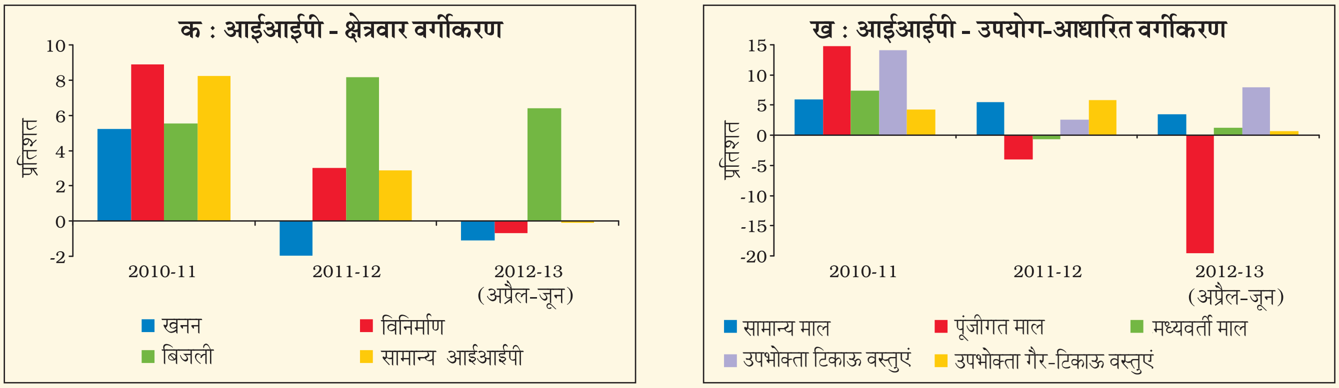

[2] बुनियादी माल के अंतर्गत ऐसी कच्ची सामग्री/उत्पाद शामिल हैं जिनका प्रयोग विनिर्माण और कृषि क्षेत्र में नई मदों के उत्पादन की मात्रा बढ़ाने में किया जाता है। ऐसे माल/उत्पादों को मध्यवर्ती माल कहा जाता है जिनका या तो अपूर्ण रूप से उत्पादन किया जाता है या जो उत्पादन को पूरा करने में निविष्टि के रूप में काम आते हैं।

प्राकृतिक गैस के उत्पादन की मात्रा में कमी आने तथा कोयला, उर्वरक और कच्चे तेल के उत्पादनों के घटने से प्रमुख उद्योगों की वृद्धि दर 4.4 प्रतिशत पर पहुंच गई जबकि पिछले वर्ष इसमें 6.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी (चार्ट II.7)। अप्रैल-मई 2012 में उर्वरकों, प्राकृतिक गैस और कच्चे तेल उद्योग के उत्पादन में कमी आई तथा इस्पात, रिफाइनरी उत्पादों और बिजली के उत्पादन की वृद्धि दर में गिरावट आई।

II.1.37 विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि प्रमुख उद्योगों, विशेष रूप से बिजली, जिसका औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में 10.3 प्रतिशत का भारांक है, से प्राप्त होने वाली निविष्टियों पर काफी हद तक निर्भर रहती है। बिजली की उपलब्धता पर विनिर्माण क्षेत्र की निर्भरता के विषय में किए गए एक अनुभवमूलक मूल्यांकन से यह पता चला है कि बिजली में वार्षिक रूप से एक प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी होने से विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर में 0.4 प्रतिशत अंक की वृद्धि होती है। यह बात विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दरों और बिजली के सूचकांकों में होने वाले समान उतार-चढ़ाव के रूप में स्पष्ट हुई है (चार्ट II.8)। तथापि, जून 2010 से इन दोनों में कुछ अंतर दिखाई पड़ा है। विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि की गति काफी कम होने के बावजूद अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में पेट्रोलियम उत्पादों, खास तौर पर डीज़ल के स्थान पर बिजली का प्रयोग किए जाने की वजह से बिजली की वृद्धि लगातार बढ़ती रही। डीज़ल की खपत में आई गिरावट से यह बात सामने आई। बिजली का उत्पादन बढ़ने से देश में बिजली की कमी में कुछ सुधार हुआ है। 2009-10 में देश में बिजली की कमी 10.1 प्रतिशत थी और 2011-12 में यह 8.5 प्रतिशत हो गई, जबकि पारिवारिक क्षेत्र की बिजली की मांग में बढ़ोतरी होती रही है।

चार्ट II.7 : बुनियादी संरचना उद्योग में वृद्धि

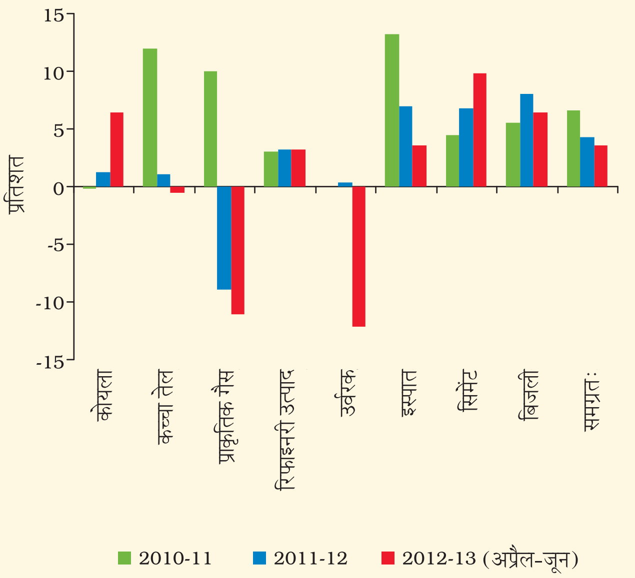

चार्ट II.8 : विनिर्माण और बिजली की वृद्धि का संबंध

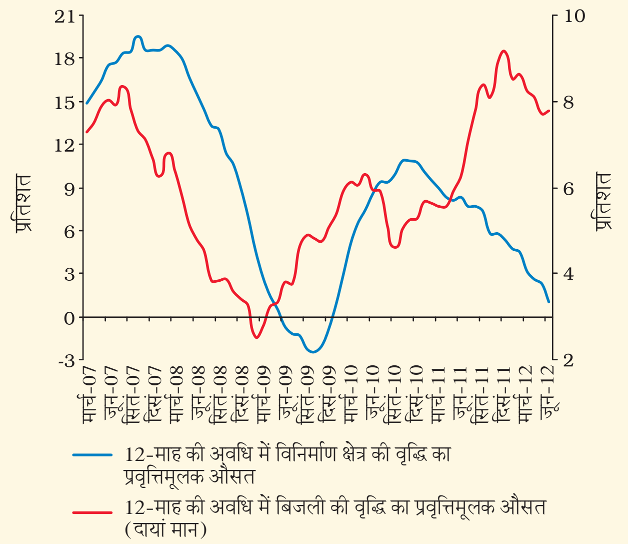

II.1.38 हाल के वर्षों में राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख औद्योगिक निविष्टियों की मांग और आपूर्ति का अंतराल बढ़ता रहा है। कोयले के मामले में 2007-08 में मांग और आपूर्ति का अंतराल 50 मिलियन टन था, जबकि 2011-12 में यह बढ़कर 114 मिलियन टन हो गया। यह अनुमान लगाया गया है कि 12वीं पंचवर्षीय योजना (2016-17) के अंतिम वर्ष में 185 मिलियन टन का अंतराल होगा। उत्पादन की गति बढ़ाने की दृष्टि से शुरू की गई कैप्टिव माइनिंग की नीति से इस क्षेत्र को वांछित सहायता नहीं मिली। तथापि, हाल में सरकार द्वारा बिजली संयंत्रों को पर्याप्त मात्रा में कायले की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए किए गए उपायों से कोयला उत्पादन बढ़ाने में मदद मिली। नवंबर-मार्च 2011-12 में कोयले उत्पादन की औसत वृद्धि 8.5 प्रतिशत थी, जो अप्रैल-अक्तूबर 2011-12 में (-)5.6 प्रतिशत रही और अप्रैल-जून 2012 में 6.4 प्रतिशत पर पहुंच गई। यदि कोयले के निर्यात की अनुमति और विदेशों में कोयले की परिसंपत्तियों का अभिग्रहण जैसे उपाय किए जाएं तो इसकी मांग-आपूर्ति के अंतराल को समाप्त किया जा सकता है। बिजली संयंत्रों में आपूर्ति की कमी को तत्काल दूर करने के लिए निर्यातित कोयले

के निर्बाध नौवहन, पत्तन में उतराई और उसका परिवहन सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

II.1.39 सरकार ने हाल के समय में प्रमुख क्षेत्र का उत्पादन बढ़ाने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। अन्वेषण और खनन कार्यों में निजी क्षेत्र की भागीदारी शुरू करने से अभीष्ट परिणाम प्राप्त हुए हैं। 2012-13 के केंद्रीय बजट में प्राकृतिक गैस, तरलीकृत प्राकृतिक गैस, भाप के कायले और बिजली के उत्पादन में प्रयुक्त यूरेनियम कान्सेंट्रेट जैसे ईंधनों पर लिए जाने वाले सीमा-शुल्क से पूरी छूट दी गई है। आवश्यक बुनियादी संरचना के विकास को सुसाध्य बनाने के लिए उर्वरक उद्योग, तेल और गैस भंडारण तथा पाइपलाइन सुविधाओं से संबंधित उद्योगों को पूंजीगत निवेश उपलब्ध कराया गया है ताकि सरकार-निजी सहभागिता (पीपीपी) की योजना को समर्थन प्रदान किया जा सके।

II.1.40 औद्योगिक क्षेत्र, विशेष रूप से विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि को बढ़ाने वाला एक प्रमुख कारक है और यह रोज़गार का एक स्रोत भी है। हालाँकि इस क्षेत्र की क्षमता के प्रयोग की कोई औपचारिक अनुमान-व्यवस्था उपलब्ध नहीं है और सकल देशी उत्पाद में इसका काफी कम हिस्सा है, अतः कारोबारी परिवेश और अपेक्षित बुनियादी संरचना उपलब्ध कराने से इस क्षेत्र में क्षमता के उपयोग को काफी हद तक सुधारा जा सकता है (बॉक्स ।।.3)।

बॉक्स II.3
क्षमता का उपयोग : भारत में प्रचलित अवधारणा और मापन पद्धति

यदि क्षमता के उपयोग का ठीक-ठीक आकलन किया जाए तो उससे अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के प्रारंभिक दबावों का विश्वसनीय संकेत मिल सकता है। क्षमता के उपयोग के वास्तविक मूल्यांकन के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में मांगजन्य दबाव को इस प्रकार समाहित करता है कि यदि बाज़ार में मांग बढ़ती तो क्षमता का उपयोग बढ़ता है और यदि मांग घटती है तो क्षमता के उपयोग में कमी आती है।

अवधारणा और प्रबंधन

क्षमता के उपयोग से अभिप्रेत है निश्चित काल-खंड में उपयोग में लाई जाने वाली कुल उत्पादक क्षमता का प्रतिशत। कारोबार चक्रों और नीतिगत परिवर्तनों को दर्शाने की वजह से क्षमता का उपयोग एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है। निवेश दर, श्रमिक उत्पादकता और मुद्रास्फीति में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करने में क्षमता के उपयोग के मापन पर काफी निर्भर किया जाता है।

क्षमता के उपयोग के मापन का कोई विशेष तरीका उपलब्ध नहीं है। अर्थव्यवस्था, उद्योग या फर्म के संबंध में क्षमता के उपयोग के मापन में कई सर्वेक्षण पद्धतियों या उत्पादन संबंधी आंकड़ों का प्रयोग किया जाता है। क्षमता के उपयोग के मापन में एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है वार्टन पद्धति, जिसमें क्षमता का तात्पर्य है प्रत्येक कारोबार चक्र में प्राप्त उच्चतम उत्पादन स्तर। इस पद्धति में यह माना जाता है कि उत्पादन में प्रकट होने वाले सभी अल्पावधिक उच्चतम स्तर 100 प्रतिशत क्षमता के उपयोग को दर्शाते हैं। परिचालनगत दरों संबंधी आर्थिक सर्वेक्षण क्षमता के उपयोग का पता लगाने की एक वैकल्पिक पद्धति है। किंतु इन सर्वेक्षणों में क्षमता की कोई विशेष परिभाषा नहीं है, अतः आम तौर पर ऐसे सर्वेक्षणों में आत्मनिष्ठ मापन किया जाता है। उत्पादन कार्यों के अनुरूप संभाव्य उत्पादन का मूल्यांकन करना भी क्षमता के उपयोग के मापन की एक और पद्धति है जिसमें यह दर्शाया जाता है कि पूंजी और श्रम निविष्टि का पूरी तरह से उपयोग कर अभीष्ट स्तर पर उत्पादन हासिल किया जा सकता है। क्षमता के उपयोग के मापन में उत्पादन-उन्मुख पद्धति एक ऐसी भी पद्धति है जहाँ निश्चित निविष्टि स्तर की तुलना में संभाव्य अधिकतम उत्पादन (अर्थात् क्षमताजन्य उत्पादन) का मूल्यांकन किया जाता है।

भारत में क्षमता के उपयोग का मापन : मौजूदा पद्धतियां

भारत में क्षमता के उपयोग के आकलन के लिए कोई एकल अधिकृत मूल्यांकन पद्धति उपलब्ध नहीं है। वर्तमान में केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन ने अपनी मासिक 'बुनियादी संरचना क्षेत्र के कार्य-निष्पादन संबंधी सार रिपोर्ट' में प्रमुख बुनियादी उद्योगों में क्षमता के उपयोग संबंधी कतिपय मूल्यांकन प्रस्तुत किए हैं। रिजर्व बैंक ने अपने 'क्रयादेश पुस्तक, स्टॉक और क्षमता उपयोग सर्वेक्षण' में भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में क्षमता के उपयोग के स्तर का मूल्यांकन उपलब्ध कराया है। क्षमता के उपयोग के स्तर का परिकलन चुनिंदा कार्य-पद्धति के अनुसार कंपनियों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले आंकड़ों से किया जाता है। यह सर्वेक्षण विनिर्माण क्षेत्र में मौजूद 2,500 ऐसी सार्वजनिक व निजी क्षेत्र की लिमिटेड कंपनियों के बीच किया गया, जिनका आकार अपेक्षित स्तर का हो/उद्योग क्षेत्र में जिनकी प्रतिष्ठा हो। प्रत्येक दौर में एक समान स्वरूप की कंपनियों के समूह के संबंध में क्षमता के उपयोग में होने वाले उतार-चढ़ावों का अध्ययन करने के लिए प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण किया गया ताकि संदर्भाधीन तिमाहियों से संबंधित आंकड़ों की तुलना कारगर हो। 2011-12 की चौथी तिमाही के संबंध में किए गए सर्वेक्षण के 17वें दौर के परिणामों को जुलाई 2012 में जनसाधारण की सूचनार्थ उपलब्ध कराया गया।

भारतीय वाणिज्य और उद्योग परिसंघ के तिमाही 'बिज़नेस कॉन्फिडेन्स सर्वे' और 'सर्वे ऑन इंडियन मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर' में औद्योगिक क्षेत्र में क्षमता के उपयोग का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद् ने भी अपने तिमाही 'बिज़नेस एक्सपेक्टेशन सर्वे' में भारतीय उद्योगों में क्षमता के उपयोग की जानकारी उपलब्ध कराई है।

भारतीय संदर्भ में क्षमता के उपयोग की अधिकांश मूल्यांकन पद्धतियां सर्वेक्षण पद्धतियों पर आधारित हैं। ये पद्धतियां अन्य देशों में प्रचलित प्रथा के अनुरूप हैं। किंतु भारतीय उद्योग क्षेत्र में क्षमता के उपयोग के मापन के लिए वार्टन पद्धति का प्रयोग करने की चेष्टा की गई। अर्थव्यवस्था में मांगजन्य दबावों की पहचान में कामयाब होने की वजह से वार्टन पद्धति से, अन्य प्रथागत समय क्रम पद्धतियों की तुलना में, कई लाभ प्राप्त होते हैं। क्षमता के उपयोग की उच्च दरों से यह पता चलता है कि अर्थव्यवस्था में मांगजन्य दबाव बढ़ गए हैं और इससे मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी होगी। भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में वार्टन विचार-धारा पद्धति का प्रयोग करते हुए परिकलित क्षमता की उपयोग दर मुद्रास्फीतिकारी दबाव की प्रमुख सूचक के रूप में काम करती है, जो सैद्धांतिक प्रत्याशा के अनुरूप होती है। विनिर्मित उत्पादों में क्षमता के उपयोग के एकल काल-खंड के संदर्भ में मुद्रास्फीति का 0.54 अंक का महत्त्वपूर्ण धनात्मक सहसंबंध होता है (चार्ट 1)। इसके अलावा, क्षमता के उपयोग के संबंध में वार्टन पद्धति और

(जारी...)

चार्ट 1 : विनिर्माण क्षेत्र में क्षमता का उपयोग और मुद्रास्फीति

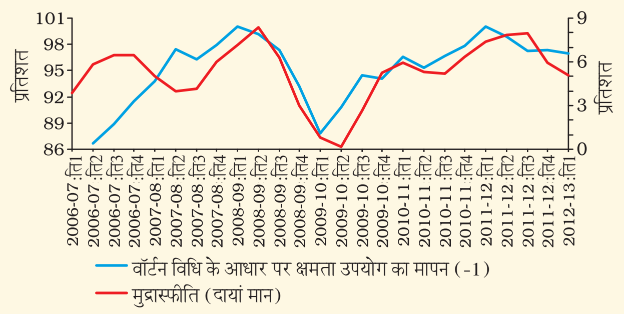

चार्ट 2 : वार्टन विधि और ओबीआईसीयूएस के आधार पर क्षमता उपयोग का मापन

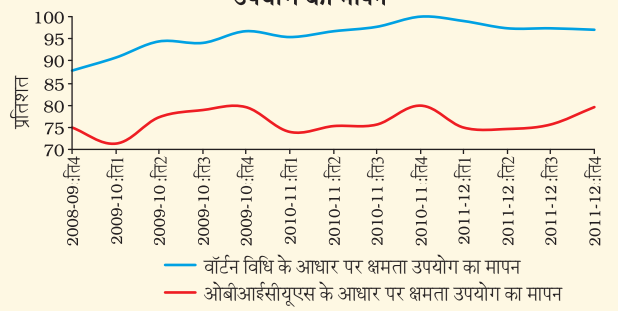

क्रयादेश पुस्तक, स्टॉक और क्षमता उपयोग सर्वेक्षण के माध्यम से मोटे तौर पर प्राक्कलित प्रवृत्ति समान है (चार्ट 2)।

व्यवहार में, क्षमता के उपयोग के मूल्यांकन में सर्वेक्षण पद्धतियों को कतिपय कारणों से समयक्रम पद्धतियों, जिसमें कई सारी कमियां हैं, के स्थान पर प्राथमिकता दी जाती है। कारण ये हैं- उपयोग में लाई जाने वाली वैकल्पिक पद्धतियों से प्राप्त होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के मूल्यांकन, ऐसी धारणा बना जाना कि औद्योगिक क्षेत्र को उपलब्ध सारा पूंजीगत स्टॉक का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता है जबकि हकीकत इसके विपरीत है, एक वर्ष के अल्पावधिक काल-खंड में हासिल उत्पादन के उच्चतम स्तर का चयन किया जाना, अंतिम विनिर्देशन की समस्या और प्रत्येक फर्म के उत्पादन की गतिविधियों का सही स्वरूप विनिर्दिष्ट करने में आने वाली कठिनाइयां आदि। समयक्रम पद्धति के अंतर्गत आधार वर्ष का संशोधन तय करने, तथा अंत में अनंतिम आंकड़ों की परिवर्तनशीलता निर्धारित करने में पैदा होने वाली परेशानियां। उदाहरणार्थ, आधार वर्ष को 1993-94 से 2004-05 में परिवर्तित करने से नए क्रम के अंतर्गत औद्योगिक उत्पादन सूचकांक लगभग +/- 11 प्रतिशत तक का अंतर आ जाता है। अतः क्षमता के उपयोग से संबंधित पद्धति ऐसी हो जिसमें क्षमता/संभावित उत्पादन की विभिन्न अवधारणाओं की उपयुक्तता पर ध्यान केंद्रित करने वाले विभिन्न तत्त्वों, मौजूदा आंकड़ों में पाई जाने वाली खामियों का मूल्यांकन, और विभिन्न उपायों का प्रयोग एवं निर्वचन आदि जैसी मदें शामिल हों।

संदर्भ

मुखर्जी, ए. और रेखा मिश्र (2012), ''एस्टिमेशन ऑफ कैपेसिटी युटिलाइजेशन इन इंडियन इंडस्ट्रीज : इश्यूज़ एंड चैलेंजेस'', *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया वर्किंग पेपर्स*, मई

डोंडे, के. और मृदुल सागर (1999), पोटेन्शियल आउटपुट एंड आउटपुट गैपः ए रेव्यू'', *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ऑकेज़नल पेपर्स*, खंड 20, सं.3, विन्टर।

II.1.41 चीन और कुछ पूर्व एशियाई देशों की अर्थव्यवस्थाओं में सकल देशी उत्पाद में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी 30-40 प्रतिशत के बीच रही। भारत में सुधार के बाद की अवधि में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी 14-16 प्रतिशत के आसपास थी। आशा की जाती है कि राष्ट्रीय विनिर्माण नीति से विनिर्माण क्षेत्र को काफी सहायता मिलेगी। इस नीति का उद्देश्य है मौजूदा स्थिति में सुधार करते हुए और 100 मिलियन नौकरियों का सृजन करके प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देते हुए 2022 तक सकल देशी उत्पाद में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी को बढ़ाकर 25 प्रतिशत करना।

सेवा क्षेत्र की वृद्धि में कुछ कमी

II.1.42 हाल के वर्षों में भारत की वृद्धि में सेवा क्षेत्र का सर्वाधिक योगदान रहा है, जिसने वैश्विक आर्थिक संकट की अवधि में खराब स्थिति का अच्छी तरह से सामना किया। किंतु हाल के समय में सेवा क्षेत्र में गिरावट दिखाई दे रही है। 2011-12 में इस क्षेत्र की वृद्धि दर 8.5 प्रतिशत पर पहुंच गई, जबकि पिछले वर्ष 9.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई थी (चार्ट II.9)। निर्माण क्षेत्र में आई गिरावट इस कमी का प्रमुख कारण रही। आलोच्य वर्ष में निर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर में 5.3 प्रतिशत की बढ़ोतरी रही, जबकि पिछले वर्ष 8.0

चार्ट II.9: सेवा क्षेत्र के सकल देशी उत्पाद में वृद्धि

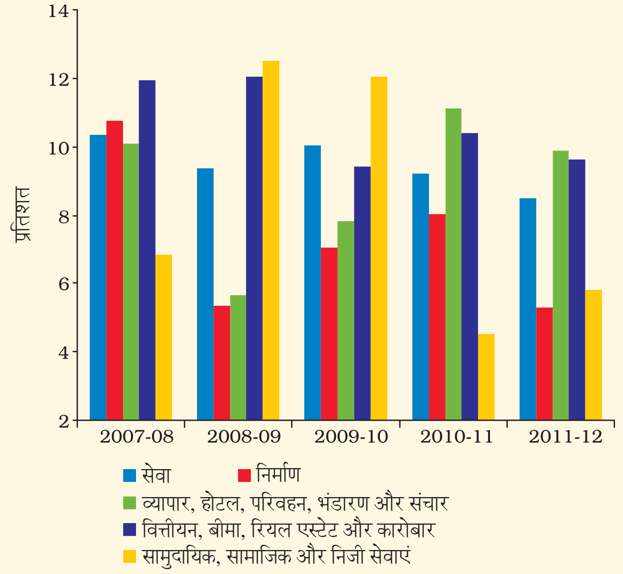

प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज हुई थी। मांग के घटने और औद्योगिक क्षेत्र के साथ अंतर-संबंध ढीला होने के चलते सेवा क्षेत्र में गिरावट आई।

II.1.43 निर्माण उद्योग में लाभ का उच्च मार्जिन बनाए रखने के कारण आवास निर्माण से संबंधित सामग्री के मूल्यों में बढ़ोतरी होती रही, जिसके परिणामस्वरूप निर्माण कार्यकलापों में ढिलाई आई। 2011-12 में सड़क निर्माण संबंधी निविदाएं बड़ी मात्रा में दी गईं, जिससे आगामी वर्षों में निर्माण कार्यकलाप को सहायता मिल सकती है। किंतु बाद में सड़क परियोजनाओं के समक्ष नई-नई अड़चनें पैदा हुईं, जिनकी वजह से 2012-13 की पहली तिमाही में दी गई निविदाओं की संख्या में काफी गिरावट आई (चार्ट ।।.10)।

II.1.44 औद्योगिक कार्यकलापों से घनिष्ठ संबंध रखने की वजह से 2001-12 की अवधि में 'व्यापार, होटल, परिवहन और संचार' क्षेत्रों की वृद्धि की गति भी धीमी रही। परिवहन क्षेत्र में आई मंदी के प्रभाव से व्यापारिक मोटर वाहनों के उत्पादन में भी कमी हुई। नए सेल फ़ोन कनेक्शनों की संख्या में कमी आने की वजह से दूरसंचार उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ। इसके पीछे आंशिक रूप से दो कारण रहे, यथा- विनियामक दंड लगाया जाना और इस क्षेत्र की असाधारण वृद्धि का दौर समाप्त होने के बाद मंदी आना।

II.1.45 चूंकि व्यापार और परिवहन जैसे उप क्षेत्र औद्योगिक उत्पादन पर अवलंबित रहते हैं, अतः सेवा क्षेत्र की स्थिति मुख्य रूप से औद्योगिक वृद्धि पर निर्भर करती है। इस क्षेत्र की वृद्धि की संभावना वैश्विक आर्थिक परिस्थिति पर निर्भर रहती है (बॉक्स ।।.4)। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक स्थिति खराब रहने से भारतीय सेवा क्षेत्र का निर्यात प्रभावित हो सकता है।

हाल के वर्षों में रोज़गार में संरचनागत परिवर्तन दिखाई पड़ा

II.1.46 आम तौर पर जब अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि होने लगती है तो रोज़गार क्षेत्र का स्वरूप कृषि क्षेत्र से विनिर्माण क्षेत्र और उसके बाद सेवा क्षेत्र का रूप धारण करता है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत में रोज़गार की संरचना में बदलाव की गति धीमी रही है। 2009-10 में कुल कार्यबल में कृषि क्षेत्र में रोज़गार प्राप्त करने वालों की हिस्सेदारी 53.2 प्रतिशत से अधिक रही, जिसका सकल देशी उत्पाद में लगभग 14.7 का योगदान है। सकल देशी उत्पाद में उद्योग और सेवा क्षेत्र का योगदान क्रमशः 20.2 प्रतिशत और 65.1 प्रतिशत है। कुल श्रम बल में इन क्षेत्रों में कार्यरत लोगों का हिस्सा क्रमशः 11.9 प्रतिशत और 35.0 प्रतिशत है।

II.1.47 हाल के वर्षों में रोज़गार के संदर्भ में कृषि और विनिर्माण क्षेत्र में बदलाव आया है। अब निर्माण, परिवहन और संचार को प्राथमिकता दी जा रही है (चार्ट ।।.11)। निर्माण क्षेत्र में 2004-05 से 2009-10 तक की अवधि में रोज़गार की दर में 62 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है, आलोच्य अवधि में इस क्षेत्र में सर्वाधिक रोज़गार के अवसरों का सृजन हुआ है। जहाँ तक रोज़गार के स्वरूप का संबंध है, इस अवधि में समग्र रोज़गार में अनियत श्रम की वजह से सर्वाधिक वृद्धि हुई, जिससे यह पता चलता है कि इस प्रकार पैदा किए गए रोज़गार के अवसर स्थायी स्वरूप के नहीं हो सकते हैं।

II.1.48 वर्ष 2004-05 में युवा वर्ग और महिलाओं को प्राप्त रोज़गार की संख्या में कमी आई। इस अवधि में 15 से 19 वर्ष के आयु-वर्ग के पुरुषों को प्राप्त रोज़गार की दर में 12 प्रतिशत की कमी आई।शैक्षिक संस्थाओं में स्थान प्राप्ति की दर में हुई बढ़ोतरी इसका

चार्ट II.10: भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण द्वारा सड़क परियोजनाओं का कार्यान्वयन

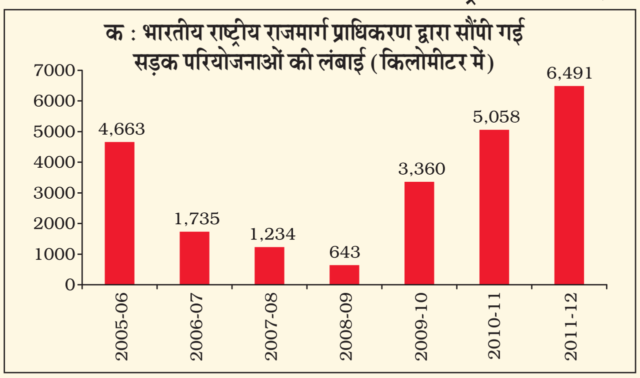

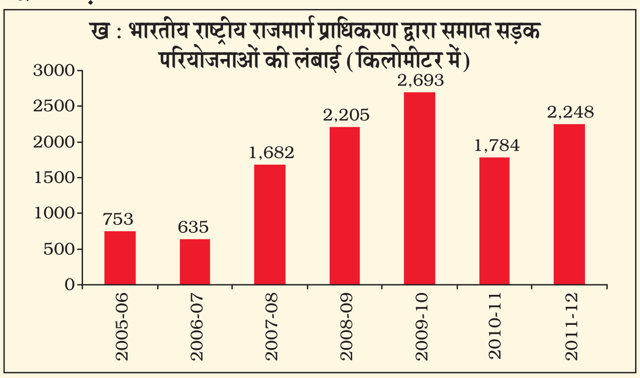

स्रोत : भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण

बॉक्स II.4
मौद्रिक नीति और विदेशी मांग का सेवा क्षेत्र की वृद्धि पर प्रभाव

वर्ष 1980 के दशक से भारत की वृद्धि के पीछे सेवा क्षेत्र का सर्वाधिक योगदान रहा है। 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में सेवा क्षेत्र के लगभग सभी घटकों की वृद्धि दरें बढ़ने लगीं और 2005-08 की अवधि में इनमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई (सारणी)। सेवा क्षेत्र के अंतर्गत विशेष रूप से संचार और बैंकिंग व बीमा की वजह से काफी विस्तार हुआ। वैश्विक वित्तीय संकट शुरू होने के बावजूद कतिपय उप-क्षेत्रों, विशेषकर 'संचार' क्षेत्र की वृद्धि दरें लगातार बढ़ती रहीं। इससे क्षेत्र सेवा क्षेत्र की आघात सहनीयता का पता चलता है। सेवा क्षेत्र की संरचना से यह मालूम पड़ता है कि इसमें 'व्यापार' क्षेत्र का प्राधन्य है, जिसकी 24 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। इसी प्रकार, उपर्युक्त वर्षों में 'बैंकिंग व बीमा' तथा 'संचार' - दोनों क्षेत्रों की हिस्सादारी में काफी बढ़ोतरी दर्ज हुई है। 'रियल एस्टेट, आवास के स्वामित्व और व्यापार सेवाओं' जिनमें आईटी सेवाएं और 'निर्माण' शामिल है, की हिस्सेदारी भी अधिक रही, किंतु संकट के बाद की अवधि में इनमें मामूली गिरावट आई।

सेवा क्षेत्र को न केवल संरचनागत सुधार संबंधी उपायों की शुरुआत के बाद उदारीकरण से और प्रति-व्यक्ति आय में काफी बढ़ोतरी होने से लाभ प्राप्त हुआ, बल्कि इसके औद्योगिक क्षेत्र के साथ अंतर्निहित संबंध होने से भी इसे काफी फायदा हुआ है। विशेष रूप से व्यापार, दूरसंचार, बैंकिंग व कारोबारी सेवा (जिसमें आईटी सेवाएं शामिल हैं) आदि क्षेत्र अत्यधिक लाभान्वित हुए हैं। निर्माण और रियल एस्टेट क्षेत्रों की अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि से द्रुत गति से होने वाला शहरीकरण उजागर होता है।

विभिन्न कारकों के प्रभाव को सामने लाने के लिए 1980-81 से 2010-11 तक की अवधि से संबंधित वार्षिक आंकड़ों के आधार पर सेवा क्षेत्र की वृद्धि के एक रैखिक रेग्रेशन का प्रयोग किया गया। 1991-92 में किए गए संरचनागत सुधारों की शुरुआत का उल्लेख करने के लिए डमी चर अंक (डीआरईएफ) अंतर्विष्ट किए गए, साथ ही कतिपय वर्षों के आउटलायर (डीवाईआरएस)भी शामिल किए गए। मांग दर (सीआर) {मौद्रिक नीति के रुख के संक्षिप्त सूचक के रूप में } थोक मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति (आईएनएफ), औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि (आईएनडी) और विश्व जीडीपी (डब्ल्यूजी) के अंकों का व्याख्यात्मक चर अंक के रूप में प्रयोग किया गया। इस प्राक्कलन के परिणाम निम्नानुसार रहे :

SER = 7.23 – 0.20 CR (-1) – 0.18 INF + 0.12 IND + 0.41 WG(-1) + 1.93 DREF + 2.29 DYRS

समायोजित R वर्गांकित = 0.81 डीडब्ल्यू= 1.84

औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि (IND) को छोड़कर सभी गुणांकों का 1 प्रतिशत भी सांख्यिकीय दृष्टि काफी महत्त्वपूर्ण है, जबकि IND के गुणांक का 5 प्रतिशत पर महत्त्वपूर्ण है। इन गुणांकों से प्रत्याशित संकेत मिलते हैं। इन परिणामों से यह भी पता चला कि मांग दरों में एक प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी होने से आगे के काल-खंड में सेवा क्षेत्र की वृद्धि में लगभग 0.2 प्रतिशत की गिरावट आ जाती है। इससे निधि की लागत में होने वाली बढ़ोतरी का प्रभाव स्पष्ट होता है। सेवा क्षेत्र की वृद्धि पर मुद्रास्फीति दर में एक प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी का प्रभाव भी लगभग इसी प्रकार का है, किंतु यह प्रभाव समय-सापेक्ष होता है। औद्योगिक क्षेत्र की जबरदस्त वृद्धि से सेवा क्षेत्र को काफी सहारा मिलता है। दूसरी ओर, सेवा क्षेत्र की वृद्धि में विश्व की कम जीडीपी वृद्धि महत्त्वपूर्ण कारक है, जिसका 0.41 का गुणांक होता है।

संदर्भ :

बंगा आर और विश्वनाथ गोलदर (2004), ''कान्ट्रिब्यूशन ऑफ सर्विसेज़ टू आउटपुट ग्रोथ एंड प्रोडेक्टिविटी इन इंडियन मैन्युफैक्चरिंग : प्री एंड पोस्ट रिफार्म्स'' *आईसीआरआईईआर वर्किंग पेपर*, नं.139, जुलाई।

ऐशनग्रीन बी और पूनम गुप्ता (2011), ''द सर्विस सेक्टर ऐज़ इंडियाज़ रोड टू इकोनॉमिक ग्रोथ'' *एनबीईआर वर्किंग पेपर*, नं.16757, फ़रवरी।

गोर्डन जे और पूनम गुप्ता (2004), ''अंडरस्टैंडिंग इंडियाज़ सर्विसेज़ रिवोल्यूशन'' *आईएमएफ वर्किंग पेपर*, डब्ल्यूपी/04/171, सितंबर।

कौर, जी., संजीव बरदलै और राज राजेश (2009), ''ऐन एम्पिरिकल इनवेस्टिगेशन ऑफ द इंटर-सेक्टोरल लिंकेजस इन इंडिया'', *भारतीय रिज़र्व बैंक ऑकेज़नल पेपर*, खंड 30, सं.1, समर

सारणी 1: सेवा क्षेत्र की संवृद्धि

(प्रतिशत)

	वृद्धि दरें				सेवा क्षेत्र में हिस्सेदारी			
	1980-83	1988-91	2005-08	2008-11	1980-83	1988-91	2005-08	2008-11
1	2	3	4	5	6	7	8	9
निर्माण	3.9	8.6	11.3	6.8	16.2	13.8	12.9	12.2
व्यापार	5.6	6.4	10.7	8.0	24.4	23.5	24.2	23.3
होटल और रेस्तरां	7.2	8.9	14.9	2.4	1.9	1.9	2.6	2.3
रेल	4.6	2.5	9.5	8.0	3.0	2.5	1.6	1.5
अन्य साधनों द्वारा परिवहन	6.7	6.2	9.0	7.0	8.6	8.7	9.1	8.5
भंडारण	2.0	1.3	6.3	10.3	0.3	0.2	0.1	0.1
संचार	6.5	6.1	24.0	28.0	0.8	0.7	3.4	5.3
बैंकिंग और बीमा	6.9	11.9	17.7	13.3	5.5	7.7	10.7	12.2
रियल एस्टेट, आवासों का स्वामित्व और कारोबारी सेवाएं	6.4	8.2	9.5	8.4	13.5	15.5	14.5	14.2
लोक प्रशासन और रक्षा	4.9	5.2	4.6	13.1	12.3	13.1	8.6	9.2
अन्य सेवाएं	3.4	7.0	6.3	7.3	15.4	14.3	12.2	11.2
सेवा क्षेत्र	**5.3**	**7.2**	**10.5**	**9.5**	**45.4***	**49.0***	**62.1***	**64.9***

*: सकल देशी उत्पाद में सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी। **स्रोत :** केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय।

चार्ट II.11: रोज़गार

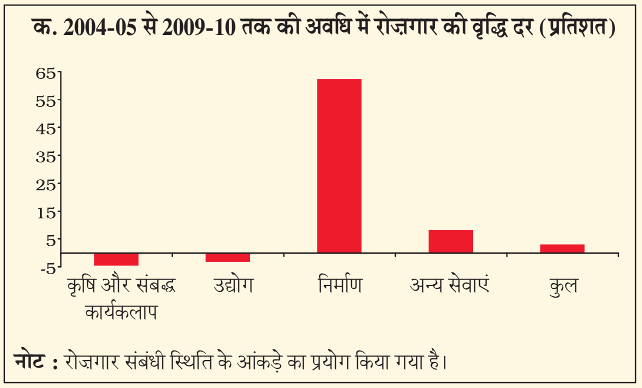

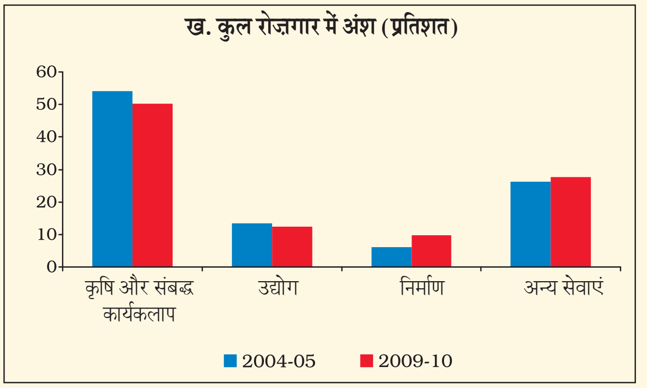

प्रमुख कारण रही। 2004-05 में शैक्षिक संस्थाओं में पढ़ाई को अपने प्रमुख कार्यकलाप के रूप में मानने वाले 15-19 वर्ष के आयु-वर्ग के पुरुषों का हिस्सा 51 प्रतिशत था, जबकि 2009-10 में यह बढ़कर 63 प्रतिशत हो गया। जहाँ तक महिलाओं का सवाल है, सभी आयु-वर्गों की महिलाओं में कार्य सहभागिता दर (डब्ल्यूपीआर) में आई गिरावट से कुल श्रम बल में इनकी सहभागिता में आई गिरावट का पता चला। इसके परिणामस्वरूप, घरेलू कार्यों से संबद्ध महिलाओं के अनुपात में बढ़ोतरी हुई जो 2004-05 के 31.6 प्रतिशत की तुलना में 2009-10 में बढ़कर 37.8 प्रतिशत हो गया।

II.1.49 हाल के समय में रोजगार में हुई कम वृद्धि और वास्तविक मज़दूरी में हुई बढ़ोतरी की भी महत्ता रही। कार्य सहभागिता दर में आई गिरावट के चलते श्रमिक बाज़ार में मांग बढ़ गई, जिसके परिणामस्वरूप आंशिक रूप से वास्तविक मज़दूरी में बढ़ोतरी हुई। इसके अलावा, एमजीएनआरईजीए की शुरुआत से 2004-05 से लोक निर्माण कार्यों में आठ-गुना वृद्धि दर्ज हुई। साथ ही, लोक निर्माण कार्यों हेतु दी जाने वाली मज़दूरी में हुई बढ़ोतरी से भी वास्तविक मज़दूरी में वृद्धि हुई। तथापि, 2009-10 में ग्रामीण रोज़गार के कुल श्रम दिनों में लोक निर्माण कार्यों की 2 प्रतिशत से भी कम हिस्सेदारी रही। इसके अलावा, लोक निर्माण कार्यों में मिलने वाली मज़दूरी गैर-सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण कार्यों और नियमित/वेतनभोगी कर्मचारियों को प्राप्त होने वाली मज़दूरी से कम रही।

II.1.50 समग्र रूप से 2011-12 में चक्रीय और संरचनागत कारकों की वजह से वृद्धि में तेज़ गिरावट आई। 2010-11 में अच्छी रिकवरी के बाद वैश्विक कारकों और उच्च मुद्रास्फीति के चलते चक्रीय गिरावट आने लगी। अर्थव्यवस्था में रहने वाली संरचनागत अड़चनों की वजह से और गिरावट आई। चूंकि अब तक इन संरचनागत अड़चनों को दूर नहीं किया गया है, अतः निकट भविष्य में वृद्धि दर में मामूली बढ़ोतरी हो सकती है। विशेष रूप से बुनियादी संरचना, खनन और धातु आदि क्षेत्रों में काफी चिंताजनक अड़चनें हैं। इन अड़चनों को दूर करने पर धीरे-धीरे निवेश की मांग में सुधार हो सकता है।

II.2 मूल्य स्थिति

मुद्रास्फीति लगातार दूसरे वर्ष भी उच्च स्तरों पर बनी रही

II.2.1 2009-10 की अंतिम तिमाही से शुरू हुआ उच्च मुद्रास्फीति का दौर बना रहा और पिछले लगातार दो वर्षों में उसने सामान्य रूप ले लिया। मुद्रास्फीति 2011-12 के पहले आठ महीनों में लगातार 9 प्रतिशत से अधिक के उच्च स्तर पर बनी रही और दिसंबर 2011 में इसमें कुछ गिरावट देखी गई। तब से यह 6.9 - 7.7 प्रतिशत के दायरे में बनी हुई है। खाद्येतर विनिर्माण उत्पादन मुद्रास्फीति लगातार 23 महीनों तक 5 प्रतिशत के ऊपर बनी रही, निवेश मांग में उल्लेखनीय गिरावट और संवृद्धि में भी कमजोरी के कारण मुद्रास्फीति नवम्बर 2011 के 8.4 प्रतिशत के उच्चतम स्तर से गिरकर मार्च 2012 तक 5 प्रतिशत के नीचे पहुँच गयी। हालांकि, निविष्टि की लागतों में निरंतर वद्धि के कारण खाद्येतर विनिर्मित उत्पादों की मुद्रास्फीति में गिरावट नहीं आयी, यद्यपि कंपनियों की आय में कमी आने के दबाव से मूल्य निर्धारण की उनकी क्षमता में गिरावट आयी। संवृद्धि में गिरावट में मौद्रिक कठोरता के कारण कीमत निर्धारण क्षमता में कमी के साथ-साथ अनुकूल आधारभूत प्रभाव और खाद्य विशेषकर

सब्जियों की कीमतों में अस्थायी गिरावट के कारण मुद्रास्फीति में गिरावट आयी।

II.2.2 गिरावट के बावजूद, मुद्रास्फीति उच्च स्तरों पर बनी रही जिसमें जुलाई 2012 में हेडलाइन थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति 6.9 प्रतिशत रही और नए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) के अनुसार खुदरा मूल्य सूचकांक दो अंकों पर बनी रही। मुद्रास्फीति उस सीमा के ऊपर बनी रही जहां संवृद्धि - मुद्रास्फीति के बीच तालमेल काम करना बंद कर देता है और मुद्रास्फीति की उच्च दर संवृद्धि और संवृद्धि की धारणीयता (2010-11 के वार्षिक रिपोर्ट का बॉक्स II.4 देखें) पर प्रतिकूल असर डालना शुरू कर देती है।

II.2.3 वर्ष के दौरान रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति संबंधी विभिन्न उपाय मुद्रास्फीति के कारकों के आकलन, विशेषकर मुद्रास्फीति के अन्य निर्धारकों की तुलना में समग्र मांग की बदलती भूमिका और समय के साथ बदलते जोखिम संबंधी विविध कारकों पर आधारित थे। उच्च और सतत बनी रहने वाली व्यापक मुद्रास्फीति के कारण अक्तूबर 2011 तक मौद्रिक नीति निरंतर कठोर बनी रही। तत्पश्चात, संवृद्धि के समक्ष आ रहे जोखिम और मुद्रास्फीति में आयी गिरावट के कारण मौद्रिक नीति के संचालन, रुझान और दिशानिर्देश में भारांक के संतुलन में बदलाव (विस्तृत जानकारी के लिए अध्याय III देखें) आवश्यक हो गया।

संवृद्धि की दर में कमी आने के बावजूद कीमत दबाव का व्यापकीकरण

II.2.4 हाल के वर्षों में मुद्रास्फीति के स्वरूप की निरंतरता को पिछले कुछ वर्षों के दौरान उतार-चढ़ाव के साथ (जैसे कि वर्ष के दौरान मासिक मुद्रास्फीति में घट-बढ़ के सहगुणांक द्वारा मापा जाता है) मुद्रास्फीति के औसत दर की प्रवृत्तियों से आंका जा सकता हैं। वर्ष 2010-11 और 2011-12 के दौरान मुद्रास्फीति की औसत दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई जबकि मुद्रास्फीति के तीव्र उतार-चढ़ाव में काफी कमी (चार्ट II.12क) आयी। उच्च स्तर पर कम उतार-चढ़ाव का होना व्यापक सतत उच्च मुद्रास्फीति की ओर संकेत करने के साथ-साथ मुद्रास्फीति की उत्तरोत्तर वृद्धि पर लगाम लगाने में कठोर मौद्रिक नीति के प्रभाव को भी दर्शाता है। साथ ही, थोक मूल्य सूचकांक के विभिन्न पण्य समूहों में मुद्रास्फीति यह संकेत देती है कि 2009-10 की दूसरी छमाही से अधिकांश समयों में इसकी परिवर्तनीयता में आयी गिरावट मूल्य दबावों की व्यापकता (चार्ट II.12ख) की ओर संकेत करती है। बढ़ रही परिवर्तनीयता के कारण अक्तूबर 2011-जनवरी 2012 के दौरान समग्र मुद्रास्फीति में गिरावट आयी क्योंकि मुद्रास्फीति की कमी में केवल कुछ मदों का योगदान रहा। जनवरी 2012 से परिवर्तनीयता में आयी कमी यह संकेत देती है कि मुद्रास्फीति में गिरावट का असर अनेक पण्यों पर पड़ा।

II.2.5 भारत में 1970 के दशक से उच्च और सतत मुद्रास्फीति के सात प्रसंग आए जहां हेडलाइन थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति लगातार छः महीनों से अधिक समय तक 8 प्रतिशत से ऊपर बनी रही (सारणी II.2)। प्रत्येक प्रसंग में उच्च मुद्रास्फीति अधिकांशतः लगभग 2-3 वर्षों तक बनी रही। इन उच्च मुद्रास्फीति के प्रसंगों में तेल में कीमतों में बढ़ोत्तरी, सूखा और मुद्रा का अवमूल्यन जैसे विभिन्न

चार्ट II.12: मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति और उतार-चढ़ाव

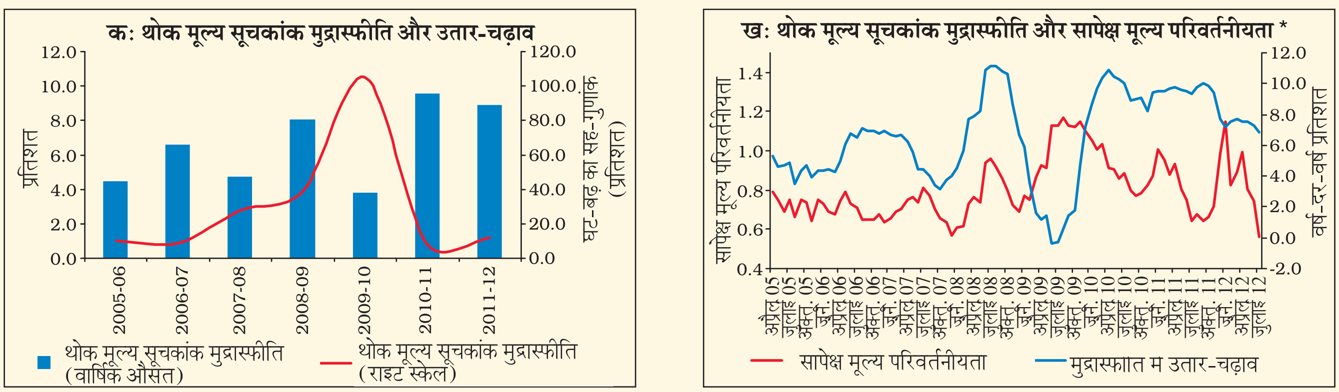

*सापेक्ष मूल्य परिवर्तनीयता के सूचकांक को $RPV = \sqrt{\sum_{i=1}^{n} w_i(\pi_i - \pi)^2}$ द्वारा मापा जाता है। (जहां π_i पण्य समूह i के लिए मुद्रास्फीति है, π मुद्रास्फीति की समग्र दर है और W_i समग्र थोक मूल्य सूचकांक में पण्य समूह i का भारांक है)

सारणी II.2: भारत में उच्च मुद्रास्फीति के दौर : 1971 से 2012

अवधि	औसत मुद्रास्फीति		महीनों की संख्या
	डब्ल्यूपीआई	सीपीआई-डब्ल्यूपीआई	
1	2	3	4
जुलाई-1972-अप्रैल-1975	19.3	19.4	34
मई-1979-दिसंबर-1981	15.7	11.1	32
अगस्त-1987-जुलाई-1988	8.8	9.6	12
फरवरी-1990-दिसंबर-1992	11.3	11.7	35
सितंबर-1993-नवंबर-1995	10.0	9.9	27
मई-2008-नवंबर-2008	10.2	9.1	7
जनवरी-2010-नवंबर-2011	9.6	10.7	23

कारण रहें हालांकि जब भी मुद्रास्फीति उच्च स्तरों पर होती है तब मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति एक समान होती है।

II.2.6 वतर्मान उच्च मुद्रास्फीति का यह दौर 1990 के मध्य से अब तक का सबसे लम्बे समय तक बने रहने वाला दौर है। मौद्रिक नीति के लिए एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि संवृद्धि में कमी के बावजूद मुद्रास्फीति लगातार क्यों बनी हुई है, इस पर ध्यान देना होगा कि मुद्रास्फीति के सभी तीन प्रमुख कारक अर्थात खाद्य, ईंधन और मूल वस्तुएं उच्च एवं सतत मुद्रास्फीति में उल्लेखनीय योगदान दे रही हैं। सब्जी जैसे कुछ खाद्य पदार्थों की कीमतों में घट-बढ़ से खाद्य मुद्रास्फीति में सामान्य तौर पर अत्यधिक उतार-चढ़ाव देखा गया, हालांकि खाद्य मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण प्रोटीन युक्त वस्तुएं रही हैं जिनकी कीमतें तीव्र गति से बढ़ना जारी है। आहार संबंधी आदतों में बुनियादी बदलाव और पारिश्रमिक में बढ़ोत्तरी से निविष्टि लागत में बढ़ोत्तरी के कारण प्रोटीन मुद्रास्फीति बढ़ गई।

II.2.7 नियंत्रित मूल्य व्यवस्था के कारण ईंधन मुद्रास्फीति दमित रहने के बावजूद ईंधन की कीमतों में बढ़ोत्तरी के कारण ईंधन मुद्रास्फीति दो वर्षों से ज्यादा समय से दो अंकों में बनी रही (परिशिष्ट सारणी 8)। हालांकि, ईंधन मुद्रास्फीति जुलाई 2012 में कम होकर 6.0 प्रतिशत हो गयी क्योंकि नियंत्रित ईंधन उत्पादों की घरेलू कीमतें पिछले एक वर्ष के दौरान बढ़ाई नहीं गयी। कच्चे माल और ईंधन की कीमतों के साथ-साथ स्टाफ लागत में बढ़ोत्तरी के कारण निविष्टि लागत बढ़ गयी जिसका प्रभाव मूल मुद्रास्फीति पर साफ-साफ दिख रहा था। इस प्रकार, मांग दबाव के अलावा, लागत दबाव का भी प्रभाव मूल मुद्रास्फीति पर दिखा।

II.2.8 वर्ष के अंतिम भाग में बढ़ोत्तरी की दर में कमी आने के बावजूद वर्ष 2011-12 के दौरान थोक मूल्य सूचकांक में निरंतर वृद्धि देखी गयी (चार्ट II.13)। वर्ष के आरंभ में थोक मूल्य सूचकांक में बढ़ोत्तरी के अनेक कारण थे जिनमें खाद्य मूल्य में बढ़ोत्तरी, ईंधन के नियंत्रित मूल्य में संशोधन के साथ-साथ मजबूत मांग और कीमत निर्धारण क्षमता के साथ उच्च निविष्टि लागत के कारण आ रहे उल्लेखनीय दबावों से विनिर्मित उत्पादों की कीमतों में बढ़ोत्तरी शामिल है। वर्ष 2011-12 के दौरान संवृद्धि में कमी के कारण मूल मुद्रास्फीति पर दबाव के घटने की संभावना थी। किंतु रुपये के अवमूल्यन और वैश्विक पण्यों की उच्च कीमतों की वजह से उत्पन्न दबाव मूल मुद्रास्फीति की गिरावट में बाधा बनी।

II.2.9 मुद्रास्फीति में गिरावट का दौर खाद्य पदार्थों की कीमतों में कमी के कारण आया जो कीमतों में मौसमी गिरावट के बाद उसमें आयी तीव्र उछाल के कारण फरवरी 2012 में दुबारा बढ़ गयी। संवृद्धि की दर में कमी के बावजूद मुद्रास्फीति में खाद्येतर विनिर्मित उत्पादों

चार्ट II.13: थोक मूल्य सूचकांक की प्रवृत्ति

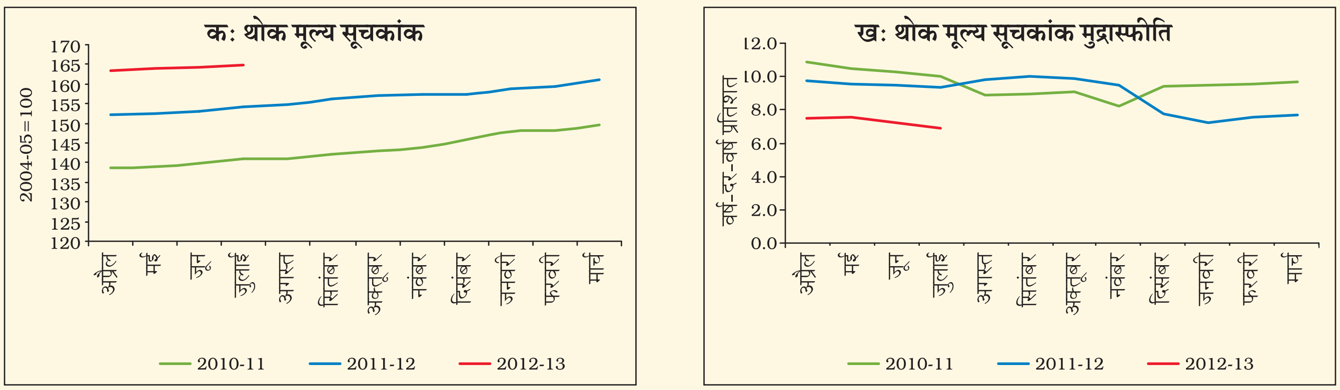

चार्ट II.14: मुद्रास्फीति में भारित योगदान (प्रतिशत में): प्रमुख समूह

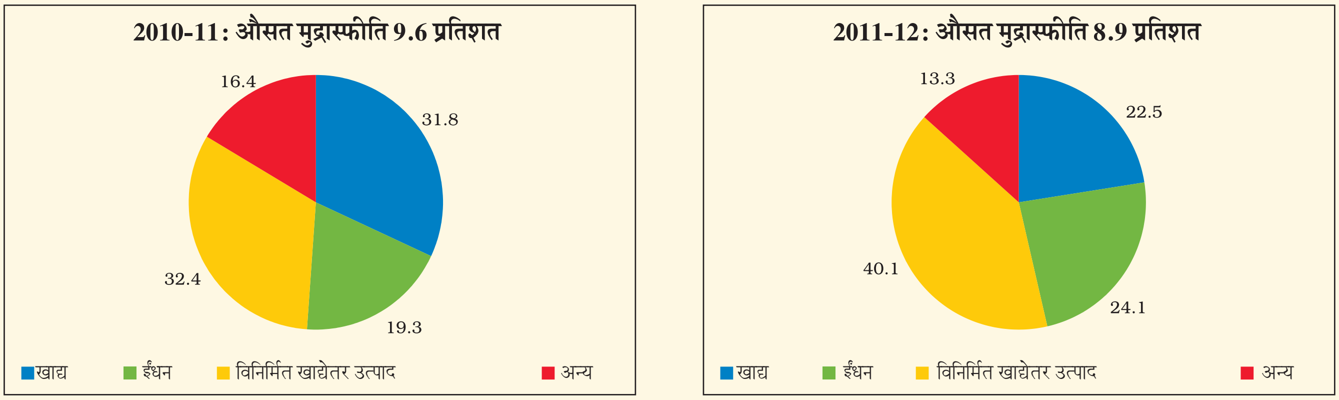

का योगदान अधिक रहा (चार्ट II.14)। किंतु कुछ पेट्रो-उत्पादों, कोयला और बिजली के नियंत्रित मूल्य से मुद्रास्फीति दमित रहने के बावजूद समग्र मुद्रास्फीति में ईंधन समूह की भूमिका उल्लेखनीय रही।

वर्ष के दौरान खाद्य मुद्रास्फीति में गिरावट के बाद बढ़ोत्तरी

II.2.10 वर्ष 2011 के दौरान भारत में दक्षिण-पश्चिम मानसून सामान्य रहा जिसके प्रभाव से चुनिंदा खाद्य पदार्थों विशेषकर अनाज और दलहन की कीमतें कुछ कम रही जिसके कारण वर्ष के दौरान औसत मुद्रास्फीति 3.6 प्रतिशत के सामान्य स्तरों पर रही। किंतु अनाजेतर वस्तुओं के कारण खाद्य मुद्रास्फीति ऊंचे स्तर (चार्ट II.15) पर बनी रही जिनपर अल्पावधि में मौसम का उतना अधिक असर नहीं होता। कुछ साक्ष्य मौजूद हैं कि प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी और आहार संबंधी तरीकों में परिवर्तन के कारण प्रोटीन युक्त वस्तुओं की मांग बढ़ी है। मजदूरी में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी के कारण हाल के वर्षों में निविष्टि लागत दबाव भी अधिक बना रहा। कभी-कभार की मौसमी गिरावटों को छोड़ दें तो कमजोर आपूर्ति उपायों के साथ-साथ निविष्टि लागत दबावों ने खाद्य मुद्रास्फीति को उच्च स्तर पर बनाए रखा। नवम्बर 2011-जनवरी 2012 के बीच प्राथमिक खाद्य मुद्रास्फीति में तेजी से गिरावट देखी गयी जो 10 प्रतिशत के ऊंचे स्तर से नकारात्मक स्तर तक पहुंच गयी। यह सब्जियों की कीमतों में मौसमी गिरावट और अनुकूल आधारभूत प्रभाव को दर्शाती है। किंतु, बाद में कीमतों में भारी उछाल आया और अप्रैल 2012 तक मुद्रास्फीति दुबारा दो अंकों में चली गयी। अक्तूबर 2011 से प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों की कीमतें लागतार ऊंची बनी रहीं।

II.2.11 खाद्य मुद्रास्फीति के प्रबंधन के लिए आपूर्ति को बढ़ाने के उपाय करने की आवश्यकता होती है क्योंकि खाद्य मुद्रास्फीति पर नियंत्रण के लिए मौद्रिक नीति के माध्यम से मांग प्रबंधन की अपनी सीमा है और इससे संवृद्धि प्रभावित होती है। उच्च औसत स्तरों पर

चार्ट II.15: खाद्य मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति

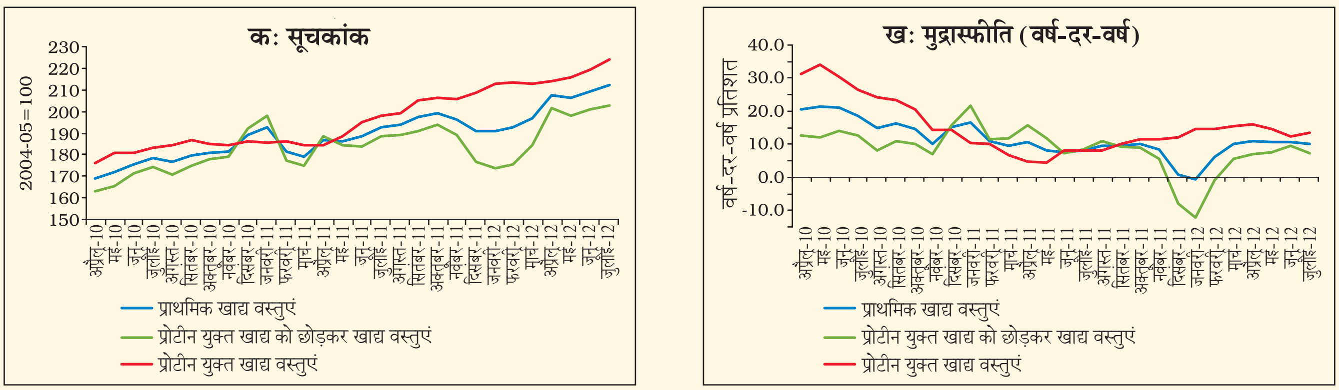

खाद्य मुद्रास्फीति में न केवल अत्यधिक उतार-चढ़ाव देखा गया, परंतु थोक और खुदरा स्तरों पर भी मूल्य के बीच के अंतर में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। यह आपूर्ति श्रृंखला में व्यवधानों की भूमिका की ओर इशारा करती है। इस संबंध में प्रभावी नीतिगत हस्तक्षेपों के लिए संस्थागत अनेक कारकों को ध्यान में रखना होगा (बॉक्स II.5)।

बॉक्स II.5

कृषि में आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन :फार्म स्थल से खुदरा बाजार तक

पण्यों, विशेषकर कृषि उत्पादों, की कीमतों में बहुत ज्यादा उतार-चढ़ाव को स्पष्ट करने के लिए आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन के परिप्रेक्ष्य में विकसित रिटेल स्प्रैड की संकल्पना का प्रयोग पारंपरिक तौर पर बाजार की दक्षता को आंकने में किया जाता रहा है। एक प्रभावी विपणन प्रणाली विपणन सेवाओं की लागत को कम कर देती है और ग्राहक द्वारा किसी उत्पाद के लिए दिए गए मूल्य का अधिकांश हिस्सा उत्पादक के पास पहुंचता है। भारत में विभिन्न व्यष्टि-स्तरीय अध्ययनों में यह पाया गया है कि बहुत सारे कृषि पण्यों (जिसके मूल्य में फार्म से निकलने के बाद बहुत कम बढ़ोत्तरी होती है) के अंतिम मूल्य में उत्पादकों का हिस्सा बहुत अधिक नहीं होता। हालांकि ये अध्ययन विभिन्न समयों में और विभिन्न पण्यों के लिए किए गए थे, इनके परिणामों को सभी के ऊपर लागू नहीं किया जा सकता। किंतु, ये विभिन्न पण्यों की आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन में व्याप्त अदक्षता की पर्याप्त स्पष्ट तस्वीर पेश करते हैं। ये अदक्षताएं उच्च खाद्य मुद्रास्फीति जिसमें प्रोटीन से संबंधित वस्तुएं प्रमुख हैं, में परिलक्षित हुईं। बढ़ती हुई आय और जनसांख्यिकीय परिवर्तनों के कारण आयी मांग को पूरा करने में आपूर्ति श्रृंखला को परेशानी हो रही है(गोकर्ण, 2011)।

विभिन्न पण्यों के लिए विपणन चैनल प्रत्येक पण्य के मामले में भिन्न है और वे किसान से अंतिम उपभोक्ता तक उत्पाद को पहुँचाने में शामिल बाजार के विभिन्न लोगों पर निर्भर करते हैं। बाजार के चैनल की श्रृंखला बाजार के आकार, पण्यों की प्रकृति और उपभोक्ता स्तर पर मांग की प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। व्यष्टि स्तर के अध्ययन में पहचाने गए इन चैनलों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है (i) उत्पादक-उपभोक्ता, (ii) उत्पादक-खुदरा व्यापारी-उपभोक्ता, (iii) उत्पादक-थोक व्यापारी-खुदरा व्यापारी-उपभोक्ता, (iv) उत्पादक-कमीशन एजेंट-थोक व्यापारी-खुदरा व्यापारी-उपभोक्ता और (v) उत्पादक-गांव के व्यापारी-थोक व्यापारी-खुदरा व्यापारी-उपभोक्ता। बालाप्पा और ह्यूगर (2003) ने जैसा कि लिखा है कि हालांकि चैनल I और II धीरे-धीरे उभर रहे हैं परंतु अन्य चैनल पूरी तरह स्थापित हो चुके हैं और किसान उनमें से छोटे आपूर्ति श्रृंखला चैनलों को तरजीह दे रहे हैं। गुप्ता और शर्मा (2009) ने यह पाया कि किसान केवल चैनल की बाजार संबंधी दक्षता (जो उपभोक्ता द्वारा प्रदत्त मूल्य में उत्पादक को अधिकतम हिस्सा प्रदान करती है) से ही निर्देशित नहीं होते हैं बल्कि वे अपने उत्पादों के विपणन के लिए चैनलों का सहारा लेते हैं क्योंकि ये चैनल अत्यधिक आपूर्ति को खपाने की क्षमता के साथ खुदरा बाजार में भी पहुँच रखते हैं। अंततः, बिचौलिये विभिन्न पण्यों की मूल्य श्रृंखला में परिवहन जैसी सेवाओं प्रदान कर इसके आर्थिक पक्ष में वृद्धि कर देते हैं (सारस्वत, 2009)।

आपूर्ति श्रृंखला वातावरण के तीन प्रमुख चुनौतियां हैं : 1) विनियमित बाजारों तक पहुंच में सुधार लाना , 2) कृषि उत्पाद विपणन समिति (एपीएमसी) अधिनियम में उपयुक्त संशोधनों के माध्यम से अधिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना और 3) देशव्यापी साझा बाजार के निर्माण को सुविधाजनक बनाना। 'कृषि विपणन ढांचे पर गठित कार्यदल की रिपोर्ट और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिए आंतरिक और बाह्य व्यापार के लिए आवश्यक नीति' में यह उल्लिखित है कि विनियमित बाजार के लिए आदर्श घनत्व 15,000 से 18,000 हेक्टेयर होता है लेकिन इनमें राज्यवार अंतर है और यह पश्चिम बंगाल में 13,580 हेक्टेयर और मध्य प्रदेश में 37,050 हेक्टेयर है। मंडी के गवर्नेंस (आर्थिक सर्वेक्षण, 2011-12) और एकाधिकार की प्रवृत्ति (मुद्रास्फीति पर अंतर-मंत्रालयी समूह) के संबंध में सामने आ रही चिंताओं को दूर करने के लिए कृषि उत्पाद विपणन समिति (एपीएमसी) अधिनियम में संशोधन करने संबंधी सुझाव भी दिए गए। विभिन्न राज्यों में और विभिन्न पण्यों के लिए प्रवेश कर/चुंगी कर और बिक्री कर की विभिन्न दरें कृषि उत्पादों के लिए अखिल भारतीय साझा बाजार के निर्माण में बाधा पहुँचा रही हैं। इसके अलावा, विभिन्न राज्यों में आवश्यक सामग्री अधिनियम के अधीन वस्तुओं के आवाजाही पर प्रतिबंध है।

आपूर्ति श्रृंखला को मजबूत करने के विभिन्न नीतिगत दस्तावेजों में दिए गए सुझावों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है : 1) किसानों की क्षमताओं को बढ़ाना, 2) बुनियादी ढांचे को मजबूत करना, और 3) वैधानिक विकल्प। किसानों को विभिन्न समूहों- उत्पादक समूह, सहकारी, स्वयं सहायता समूह, उत्पादक कपंनी- में अपने आपको संगठित करने के लिए के लिए प्रेरित कर आपूर्ति श्रृंखला को सरल और कारगर बनाने के साथ-साथ और अधिक समतावादी बना सकते हैं। समस्त कृषि-वर्धित श्रृंखला, जैसे शीतगृह श्रृंखला का निर्माण, ग्रामीण गोदाम, कृषि विपणन के लिए नई बुनियादी सुविधाएं, और वर्तमान बाजारों का आधुनिकीकरण में निवेश को कर-अवकाश और उपयुक्त छूट लाभ प्रदान कर प्रोत्साहित कर सकते हैं। मुद्रास्फीति पर अंतर-मंत्रालयी समूह द्वारा दिए गए सुझाव को ध्यान में रखते हुए नाशवान वस्तुओं को कृषि उत्पाद विपणन समिति अधिनियम से बाहर करते हुए छोटे व्यापारियों और किसानों को नाशवान वस्तुओं के मुक्त व्यापार की अनुमति दी जानी चाहिए कि छोटे व्यापारी जहां सस्ता हो वहां खरीद सकें और किसान जहां महंगा हो वहां बेच सकें। इसी तरह, मुद्रास्फीति प्रबंधन के दीर्घावधि परिप्रेक्ष्य में कृषि उत्पाद बाजार समितियों का नियमित चुनाव संपन्न कराकर मंडी के संचालन में सुधार करने के साथ-साथ सरकार और निजी क्षेत्र की भागीदारी के साथ वर्तमान विनियमित बाजार की कार्यप्रणाली में और अधिक दक्षता लाना अति महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

बलप्पा, एस.आर. और एल.बी. ह्यूगर(2003), 'ऐन इकोनॉमिक इवैलुएशन ऑफ ओनियन प्रोडक्शन एंड इट्स मार्केटिंग सिस्टम इन कर्नाटक', एग्रीकल्चरल मार्केटिंग, खंड XLVI-सं. 2, जुलाई सितम्बर.

गोकर्ण, सुबीर(2011), ''स्ट्राईक ए बैलेंस बिटवीन ग्रोथ एंड इनफ्लेशन इन इंडिया'' बुक्रिंग इंस्टिट्यूट में प्रस्तुतिकरण, 27 जून 2011.

गुप्ता, एम. और के.डी.शर्मा (2009), 'प्रोडक्शन एंड मार्केटिंग ऑफ जिंजर इन हिमाचल प्रदेश,' *एग्रीकल्चरल सिचुएशन इन इंडिया,* खंड LXVI (13) 681-686.

सारस्वत एस.पी.(2009),'अंडरस्टैंडिंग द ऐप्पल मार्केटिंग सिस्टम ऑफ हिमाचल प्रदेश विथ रिफरेंस टू रिफरेंस टू किआरी विलेज ऑफ शिमला' *एग्रीकल्चरल सिचुएशन इन इंडिया,* खंड LXVI (4), जुलाई, 187-190.

नियंत्रित कीमत निर्धारण के माध्यम से जारी रही ईंधन की दमित मुद्रास्फीति

II.2.12 तेल की वैश्विक कीमतों (भारतीय बास्केट) में निरंतर वृद्धि से वर्ष 2011-12 के दौरान मूल्यों पर दबाव जारी रहा। कच्चे तेल की वैश्विक कीमतें वर्ष 2011-12 के दौरान लगभग 31 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी के साथ औसतन 112 अमेरिकी डॉलर प्रति बैरल पहुंच गयी जो कि वर्ष 2010-11 के दौरान औसतन 85 अमेरिकी डालर प्रति बैरल थीं। किंतु घरेलू खनिज तेल की कीमतों में लगभग 17 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, यह बढ़ोत्तरी तुलनात्मक रूप से कम रही (चार्ट II.16)। नियंत्रणमुक्त उत्पादों की कीमतों में उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय कीमतों में बढ़ोत्तरी की तर्ज पर वृद्धि हुयी जबकि तेल के नियंत्रित मूल्य में जून 2011 में परिवर्तन किया गया। ईंधन के नियंत्रित मूल्यों में परिवर्तन के बावजूद ऊर्जा क्षेत्र में दमित मुद्रास्फीति उल्लेखनीय रही। इसके परिणामस्वरूप, वर्ष 2011-12 में 1.38 ट्रिलियन रुपये की कम वसूली हुई जिसमें से अधिकांश कम वसूली (लगभग 59 प्रतिशत) डीजल के कारण हुई थी। इन कारणों से तेल विपणन कंपनियों को अधिक सब्सिडी देना अपरिहार्य हो गया जिससे मुद्रास्फीति पर राजकोषीय दबाव में बढ़ोत्तरी हुयी।

चार्ट II.16: वैश्विक और घरेलू ईंधन की कीमतें

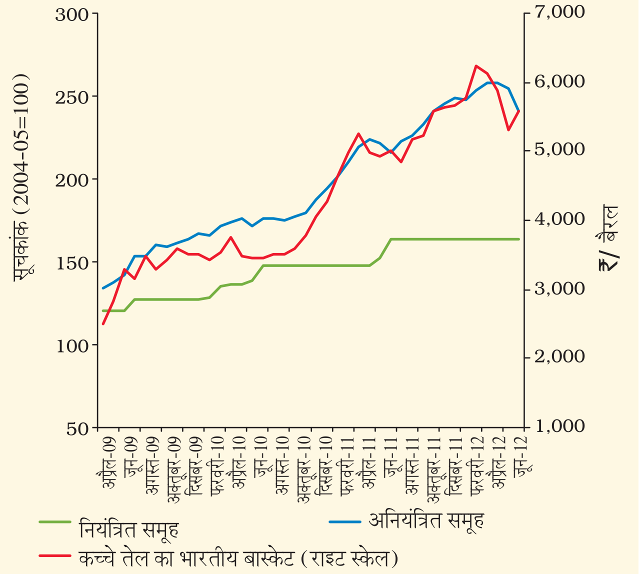

II.2.13 कोयले की कीमतों के परिवर्तन के कारण समग्र मुद्रास्फीति पर अत्यधिक दबाव पड़ा क्योंकि कोयला ईंधन समूह की एक प्रमुख मद है। जनवरी 2012 में, नॉन-कोकिंग कोयले की कीमतें 33 प्रतिशत बढ़ीं जिसके कारण समग्र थोक मूल्य सूचकांक में 0.34 प्रतिशत की प्रत्यक्ष वृद्धि हुई। बिजली उत्पादन के साथ-साथ अनेक उद्योगों में कोयले का प्रयोग होता है, इसलिए कोयले की कीमतों में परिवर्तन का असर व्यापक मुद्रस्फीति पर पड़ता है। कोयला क्षेत्र की वर्तमान प्रवृत्ति संकेत करती है कि इस क्षेत्र के मुद्दों को सुलझाने की आवश्यकता है (बॉक्स II.16)। पहले भी, निविष्टि लागत में बढ़ोत्तरी की तुलना में बिजली की कीमतों में बहुत कम बढ़ोत्तरी है

बॉक्स II.6

कोयले की कम आपूर्ति और दमित मुद्रास्फीति से निपटने के लिए कोल नीति में बदलाव की आवश्यकता

कोयला विश्व के सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोतों में से एक है, पूरे विश्व में बिजली के कुल उत्पादन में से 42 प्रतिशत बिजली का उत्पादन कोयले के माध्यम से होता है और वैश्विक प्राथमिक ऊर्जा की जरूरतों की 30 प्रतिशत पूर्ति कोयला करता है। भारत में, देश की दो तिहाई बिजली का उत्पादन कोयले पर निर्भर करता है। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआई) के आकलन के अनुसार 1 अप्रैल 2011 को भारत में उपलब्ध लगभग 286 बिलियन टन कोयले के भंडार में से वर्तमान में 114 बिलियन टन (कुल भंडार का लगभग 40 प्रतिशत) भंडार खनन के लिए उपलब्ध है। 2011-12 के लगभग 540 मिलियन टन वार्षिक के उत्पादन के वर्तमान स्तर को यदि बनाया रखा जाए तो देश के कोयले का भंडार 100 वर्षों से अधिक समय तक बना रहेगा।

विश्व के तीसरे बड़े कोयला उत्पादक होने के बावजूद, भारत बड़ी मात्रा में कोयले का आयात करता है क्योंकि घरेलू उत्पादन बिजली संयंत्रों, स्टील मिलों और सिमेंट उत्पादकों (चार्ट 1) के बड़ी और बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ है।

चार्ट 1: कोयले के आपूर्ति की प्रवृत्ति

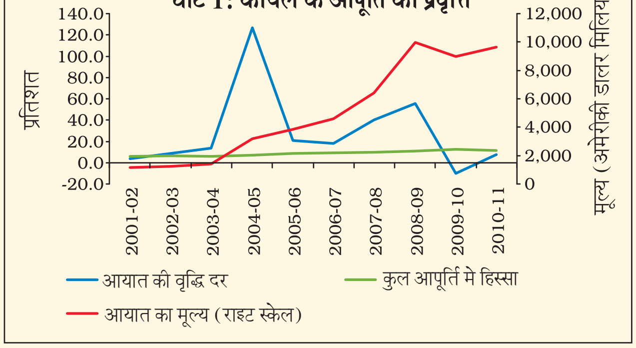

कोयला मंत्रालय के अनुसार, मांग और घरेलू आपूर्ति के बीच का अंतर 2006-07 के लगभग 43.4 मिलियन टन से बढ़कर 2011-12 में 161 मिलियन टन हो गया। कोयला मंत्रालय के संशोधित आकलनों के अनुसार, 12वीं पंचवर्षीय

(जारी....)

योजना के अंतिम वर्ष (2016-17) में मांग बढ़कर 980 मिलियन टन होने की संभावना है परंतु देश में कोयले की उपलब्धता 795 मिलियन टन ही होने का अनुमान है। अतः मांग और घरेलू उपलब्धता के बीच का अंतर 185 मिलियन टन संभावना है इस अंतर को कोयले के आयात के माध्यम से भरने की आवश्यकता होगी।

कोयले की कमी विभिन्न बिजली संयंत्रों के बिजली उत्पादन को प्रभावित कर रही है। केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण के अनुसार, कोयले की कमी के कारण बिजली उत्पादन संस्थाओं ने 2011-12 (फरवरी 2012 तक) में 8.7 बिलियन यूनिट, 2010-11 में 8.4 बिलियन यूनिट और 2009-10 में 14.5 बिलियन यूनिट की उत्पादन हानि रिपोर्ट की है। कोयला मंत्रालय के अनुसार, कोयले की कमी के कारण कोयले के आयात में उल्लेखनीय बढ़ोतरी हुई जो 2006-07 के 43.1 मिलियन टन से बढ़कर 2011-12 में 98.9 मिलियन टन हो गया। घरेलू असंतुलन के लिए पट्रोलियम उत्पादों के नियंत्रित मूल्य के प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए आयात पर अधिक निर्भरता से घरेलू और अंतरराष्ट्रीय कीमतों के बीच एकरूपता आवश्यक है। कोयले की अंतरराष्ट्रीय कीमतें कोयले की घरेलू कीमतों से उस समय भी अधिक थी जब गुणवत्ता से समझौता किया गया था और कोयले की घरेलू कीमतों को 2000 में पूरी तरह से अविनियमित करने के बाद भी कुछ समय तक इसमें विपथन बना रहा। घरेलू आपूर्ति का 80 प्रतिशत कोयला उपलब्ध कराने वाला कोल इंडिया लिमिटेड (सीआईएल) बाजार की कीमतों के आधार पर कोयले की कीमतें आवधिक रूप से तय करता है। इस प्रकार, आयात पर अधिक निर्भरता और कोयले के बढ़े हुए अंतरराष्ट्रीय मूल्य मिलकर मुद्रास्फीति, संवृद्धि, राजकोषीय घाटा और चालू खाता घाटा जैसे मुख्य व्यष्टि संकेतकों को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं जैसा कि तेल के आयात के मामले में देखा गया है हालांकि इसका प्रभाव कम या अधिक हो सकता है।

कोयले की घरेलू कीमतों को अंतरराष्ट्रीय कीमतों की तर्ज पर लाने के लिए जनवरी 2012 में कोयले के मूल्य निर्धारण फार्मूले में संशोधन पर विचार किया गया था। हालांकि इस विचार को आगे नहीं बढ़ाया गया क्योंकि नए मूल्य निर्धारण फार्मूले के कारण कोयले की कुल कीमत में बहुत अधिक बढ़ोत्तरी होती जो बिजली उत्पादन और स्टील और सिमेंट उद्योग के निविष्टि लागत को बढ़ा सकती थी और अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारक दबाव बढ़ जाते। कोयले की नई वितरण नीति (एनसीडीपी) के अनुसार, कोयले की आपूर्ति विशेष शर्तों और निबंधनों के तहत विक्रेता (कोयला कंपनियां) और ग्राहक के बीच कानूनी तौर पर लागू किए जा सकने वाले समझौते के अधीन होती है। उपभोक्ताओं के विभिन्न श्रेणियों के लिए ईंधन आपूर्ति समझौते (एफएसए) के विभिन्न मॉडल उपलब्ध हैं। सरकार ने हाल ही में निर्णय लिया कि कोल इंडिया लिमिटेड उन बिजली संयंत्रों के साथ ईंधन आपूर्ति समझौता करेगी जिन्होंने वितरण कंपनियों (डीआईएससीओएमएस) के साथ दीर्घावधि बिजली खरीद समझौता किया है और जो चालू हो गए हैं या 31 मार्च 2015 के पहले चालू होने वाले हैं। इस संदर्भ में, कोल इंडिया लिमिटेड ने नए ईंधन आपूर्ति समझौते के तहत वार्षिक अनुबंध करार का 80 प्रतिशत कोयले की आपूर्ति का आश्वासन दिया है और आपूर्ति की मात्रा में कमी होने पर सीआईएज 0.01 प्रतिशत का दंड भरेगा और यह समझौता ईंधन आपूर्ति समझौते पर हस्ताक्षर होने के तीन वर्ष बाद लागू होगा। बिजली क्षेत्र को ये शर्तें स्वीकार्य नहीं हैं। इन परिप्रेक्ष्य में, कोयले की कमी के कारण बिजली क्षेत्र की नई कंपनियां के समक्ष जोखिम हैं। कोयले की आपूर्ति में इस अंतर को उच्च मूल्य पर आयात किए गए कोयले से भरना होगा! ऐसे में कोयले की समग्र कीमतें में बढ़ोत्तरी करनी पड़ेगी। ईंधन आपूर्ति समझौते के मामले में भी घरेलू कोयले की कीमतें आने वाले वर्षों में ऊपर जा सकती हैं क्योंकि ईंधन आपूर्ति समझौते के अनुसार कोयले की आपूर्ति अधिसूचित कीमतों पर की जाती है जिनमें समय-समय पर संशोधन किया जा सकता है।

जिसके कारण सरकारी विद्युत बोर्ड का वित्त भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

वर्ष के अंतिम भाग में प्रमुख घटकों पर मुद्रास्फीतिकारक दबाव कम हुए

II.2.14 खाद्येतर विनिर्मित उत्पाद मुद्रास्फीति फरवरी-दिसंबर 2011 के दौरान 7 प्रतिशत या इसके अधिक रही जिसमें मार्च 2012 तक उल्लेखनीय कमी आने के कारण यह 5 प्रतिशत तक आ गयी। वर्ष के प्रारंभिक चरण में इस खंड में उच्च मुद्रास्फीति का कारण इनपुट लागत दबावों में तीव्र वृद्धि हुई जिन्हें फर्म मांग में तेजी के कारण अंतरित कर सकीं। संवृद्धि में कमी आने पर फर्म की मूल्य निर्धारण क्षमता में कमी आयी जिसके कारण वर्ष के दूसरे भाग में दीर्घकालिक आधार पर इस श्रेणी में मुद्रास्फीति की गति में कमी आयी। 2012-13 की पहली तिमाही में खाद्येतर विनिर्मित उत्पाद मुद्रास्फीति जुलाई 2012 में 5.4 प्रतिशत तक पहुंचने के पहले 5.0 प्रतिशत थी (चार्ट II.17)।

चार्ट II.17: खाद्येतर विनिर्मित उत्पाद सूचकांक, मुद्रास्फीति और माह-दर-माह मौसमी समायोजित वार्षिकीकृत परिवर्तन

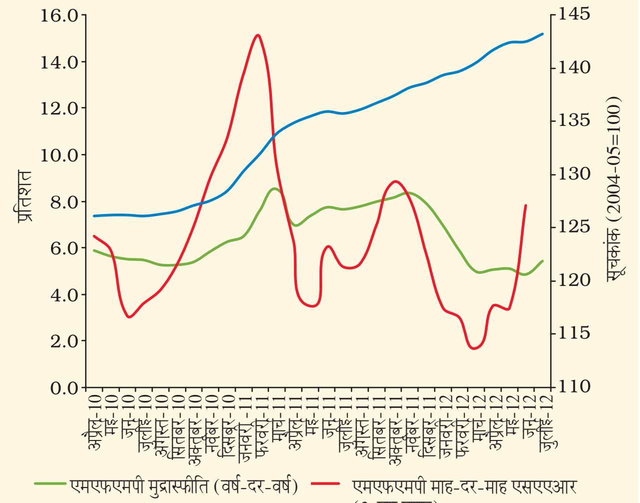

चार्ट II.18: पण्य की वैश्विक कीमतों की प्रवृत्ति

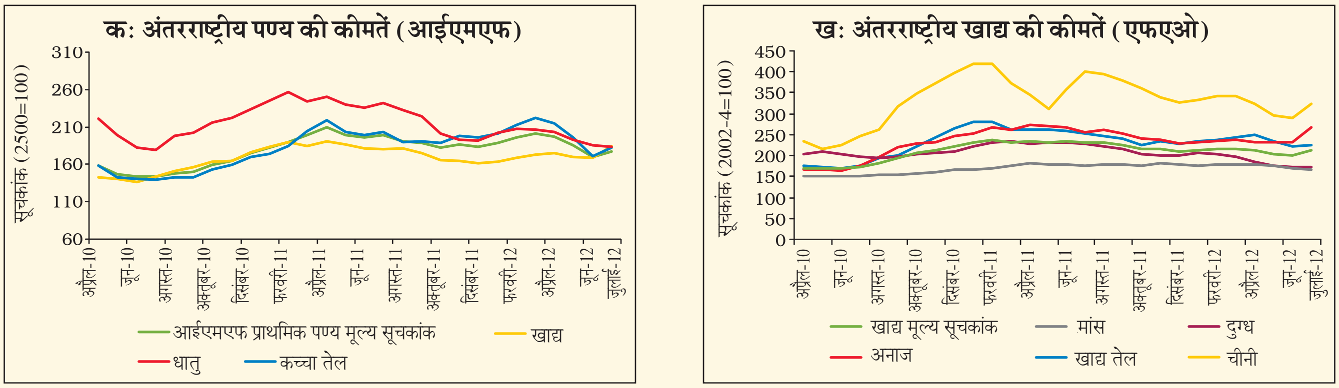

पण्यों की वैश्विक कीमतें सामान्यतः कम रही, किंतु वर्ष के दूसरे भाग में इनमें थोड़ी तेजी आयी

II.2.15 वर्ष 2011-12 के दौरान घरेलू मुद्रास्फीति की तुलना में पण्यों की वैश्विक कीमतों में प्रतिकूल प्रवृत्ति देखी गयी। यूरो क्षेत्र में गहराते ऋण की समस्या, वैश्विक संवृद्धि के प्रति जोखिम, मध्य पूर्व में भू-राजनैतिक तनाव में कमी और कृषि पण्यों सहित मुख्य पण्यों की आपूर्ति संभावनाओं में सुधार के कारण पण्यों की कीमतों में वर्ष के अधिकांश समय में कम होने की प्रवृत्ति देखी गई (चार्ट II.18)। 2011-12 के अंतिम तिमाही में ईरान में भू-राजनैतिक तनाव और अमेरिका की संवृद्धि संभावनाओं में सुधार के कारण पण्यों, विशेषकर कच्चे तेल की कीमतों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मार्च 2012 में पण्यों की कीमतों में उल्लेखनीय कमी आयी, परंतु वैश्विक बाजार में चलनिधि की अधिक उपलब्धता के साथ-साथ मुख्य पण्यों की मांग-आपूर्ति में बढ़ते अंतर के कारण पण्यों की कीमतों में बढ़ोत्तरी की संभावनाएं बन रही है। ऊर्जा की कीमतों में हाल में हुए बदलाव के साथ-साथ अमेरिका में सूखे, यूरोप में प्रतिकूल मौसम के कारण खाद्य की वैश्विक कीमतों में बढ़ोत्तरी में इसे देखी जा सकती है और अन्य प्रमुख उत्पादकों का आपूर्ति पर असर पड़ा है।

विनिमय दर में उतार-चढ़ाव ने मुद्रास्फीति को प्रभावित किया

II.2.16 पण्य की कीमतों की प्रवृत्ति के अलावा, विनिमय दर में उतार-चढ़ाव ने भी समग्र मुद्रास्फीति की दिशा को प्रभावित किया। पण्य की कीमतों में परिवर्तन की दिशा और परिमाण के आधार पर अगस्त 2011 से रुपये में मूल्यह्रास के पास-थ्रू ने पण्य की कीमतों के प्रभाव में या तो वृद्धि की या इसमें बढ़ोत्तरी की। भारत के मामले में अनुभवजन्य अनुमान यह संकेत देते हैं कि पास-थ्रू में समय के साथ कमी आयी है (बॉक्स II.7)। हालांकि, अगस्त 2011 से रुपए में मूल्यह्रास के परिमाण को देखते हुए कहा जा सकता है कि विनिमय दर मुद्रास्फीति का एक स्रोत बन चुका है।

मुद्रास्फीति के कम होने में बढ़ता हुआ राजकोषीय अंतर रुकावट डाल सकता है

II.2.17 हालांकि, सरकार ने वर्ष 2011-12 के दौरान राजकोषीय समेकन के लिए एक दिशा तय की है परंतु मुख्य घाटा संकेतकों पर तय लक्ष्यों से पीछे रहने के कारण यह मुद्रास्फीति प्रबंधन के लिए प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। संवृद्धि में कमी और विशेषकर ईंधन और खाद्य सब्सिडी के कारण राजस्व उगाही में कमी ने घाटे को बढ़ाया (विस्तृत जानकरी के लिए खंड II.5 : सरकारी वित्त देखें)। नियंत्रित मूल्य के संदर्भ में राजकोषीय हस्तक्षेप के कारण मुद्रास्फीति अल्पावधि में कम रही, हालांकि लक्ष्य से अधिक व्यय के कारण समग्र मांग में वृद्धि हुई है और इससे मूल्य स्थिरता को मध्यावधि में खतरा है।

मुद्रास्फीति पर वेतन का उल्लेखनीय दबाव रहा

II.2.18 उच्च मुद्रास्फीति मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं पर अपन्ना प्रभाव डालकर वेतन तय करने के तरीकों को प्रभावित कर सकती है जिसके कारण मजदूरी-मूल्य चक्र का निर्माण हो सकता है। हाल के अनुभवजन्य साक्ष्य संकेत देते हैं कि ग्रामीण और विनिर्माण दोनो क्षेत्रों में मुद्रास्फीति की तुलना में मजदूरी में तीव्र गति से वृद्धि हुई

बॉक्स II.7
मुद्रास्फीति पर रुपये के मूल्यह्रास का प्रभाव

विनिमय दर पास-थ्रू (ईआरपीटी) आयातक और निर्यातक देशों के बीच विनिमय दर में एक प्रतिशत परिवर्तन के कारण स्थानीय मुद्रा आयात मूल्य में हुए बदलावों के प्रतिशत को दर्शाता है। विनिमय दर के मूल्यह्रास का घरेलू उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति में पास-थ्रू समय के साथ अनेक देशों में कम हुआ प्रतीत होता है जो आंशिक तौर पर मौद्रिक नीति के फ्रेमवर्क को मुद्रास्फीति केंद्रित बनाने तथा मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं पर अंकुश लगाने में मौद्रिक नीति की सफलता को दर्शाता है (मिशकिन,2008)। जब मुद्रास्फीति के प्रति मौद्रिक नीति की प्रतिबद्धता मजबूत और विश्वसनीय होती है और मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं पर अच्छी तरह से अंकुश लगाया जाता है, तब मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं और मुद्रास्फीति प्रवृत्तियों पर आघातों का असर- चाहे वह समग्र मांग, ऊर्जा मूल्यों या विनिमय दर से हो- कम होता है।

किंतु , मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं पर अंकुश लगाने में मौद्रिक नीति की भूमिका पास-थ्रू के अनेक निर्धारकों में से एक है। पास-थ्रू के अन्य निर्धारकों में निम्न बातें शामिल हैं : (क) मुद्रास्फीति की निरंतरता, (ख) बाजार के रुख के अनुसार कीमत निर्धारण, (ग) आयातक देश में मांग की कीमत लोच, (घ) अंतिम खुदरा मूल्य में स्थानीय वितरण और विपणन लागत का हिस्सा,(ङ) देश का आकार, (च) खुलेपन की सीमा, (छ) विनिमय दर में उतार-चढ़ाव और विनिमय दर आघातों की निरंतरता , और सबसे महत्वपूर्ण (ज) विनिमय दर में मूल्यह्रास के समय घरेलू मांग की स्थिति।

बाजार की दिशा के अनुसार कीमतों का निर्धारण यह संकेत करता है कि विश्व के बाकी भागों से निर्यातक आयातक देश में मुद्रा में मूल्यह्रास के प्रभाव को आंशिक तौर पर वहन कर रहे हैं। यदि आयात स्थानापन्न वस्तुओं के घरेलू निर्माता अपनी कीमतें अपरिवर्तित रखते हैं तो पास-थ्रू कमजोर भी हो सकता हैं। भिन्न-भिन्न पण्यवार विश्लेषण यह संकेत देते हैं कि सोने और तेल जैसी कुछ वस्तुओं के लिए मांग की कीमत में लचीलापन कम हो सकता है , जिसके कारण ऐसे वस्तुओं के लिए पास-थ्रू अधिक हो सकता है। हालांकि, कभी-कभी आयातित वस्तुओं के कीमत निर्धारण में राजकोषीय नीति के हस्तक्षेप को दर्शाने वाली दमित मुद्रास्फीति के कारण पास-थ्रू कम रह सकता है। बाजार के खुलेपन में बढ़ोत्तरी के साथ, उच्च आयात की मात्रा भी पास-थ्रू को बढ़ा सकती है। यदि यह महसूस किया जाता है कि मूल्यह्रास कम समय के लिए और अस्थायी होगा, पास-थ्रू अधिक नहीं हो सकता। वास्तविक प्रभावी विनिमय दर(आरईईआर) के व्यवहार के संदर्भ में विनिमय दर का गलत संरेखण अक्सर प्रमुख संकेतक के तौर पर कार्य करती है कि मूल्यह्रास के बारे में बाजार की धारणा कैसी है। पास-थ्रू के महत्वपूर्ण निर्धारक मांग की घरेलू परिस्थितियां होती हैं जो मूल्य निर्धारण क्षमता का एक संकेतक है। मूल्य लोच वाली वस्तुओं में कमजोर घरेलू मांग फर्मों की कीमती निर्धारण क्षमता को उल्लेखनीय ढंग से सीमाबद्ध कर देती है। परिणामस्वरूप शेष विश्व से निर्यातक और मूल्यह्रास वाले देश के आयातक दोनों फर्मों को अपने लाभ मार्जिन को समायोजित करना पड़ सकता है जिसके परिणामस्वरूप पास-थ्रू कम हो सकता है।

भारत में, समय के साथ मौद्रिक नीति ने नीति के प्रति बहु-उद्देशीय और बहु-संकेतक होने के बावजूद मुद्रास्फीति उद्देश्यों के प्रति उच्च प्रतिबद्धता को स्थापित किया है। हालांकि, लगातार होने वाले आपूर्ति आघातों के कारण, उच्च स्तर पर भी हाल के वर्षों में मुद्रास्फीति में दृढ़ता देखी गयी। विनिमय दर में बड़ी मात्रा में गलत संरेखण सामान्य तौर पर देखा नहीं जा रहा है, और विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए रिजर्व बैंक के प्रयासों से स्थिरता सुनिश्चित हुई है। हालांकि, सकल घरेलू उत्पाद में आयात के हिस्से के तौर पर भारत के खुलेपन में वृद्धि हुई है परंतु राजकोषीय स्थिति में सुधार के लिए बाजार आधारित कीमत निर्धारण की महत्ता के बावजूद पट्रोलियम उत्पादों में दमित मुद्रास्फीति जारी है।

भारत में विनिमय दर पास-थ्रू पर अनुभवजन्य साक्ष्य में यह पाया गया है कि अपूर्ण पास-थ्रू के जर्बदस्त साक्ष्य मौजूद हैं इसके बावजूद पास-थ्रू की मात्रा पर विविध साक्ष्य भी हैं। खुन्द्रक्पम (2007) ने पाया कि 1991 के सुधारों के बाद घरेलू कीमतों में विनिमय दर पास-थ्रू में गिरावट का कोई स्पष्ट संकेत नहीं है। इसके आगे, पास-थ्रू में मूल्यवृद्धि और मूल्यह्रास और विनिमय दर के परिवर्तनों के आकार के बीच असममिति थी। भट्टाचार्या और अन्य (2008) ने यह पाया कि विनिमय दर में एक प्रतिशत के परिवर्तन के कारण दीर्घावधि में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में 0.04-0.17 प्रतिशत और थोक मूल्य सूचकांक में 0.29 प्रतिशत का परिवर्तन आता है। मल्लिक और मर्कुएस (2008) ने पाया कि 1990 के दशक में पास-थ्रू अपर्याप्त रही लेकिन प्रशुल्क दर पास-थ्रू (टीआरपीटी) से अधिक रही।

हाल के वर्षों में, विनिमय दर पास-थ्रू संभवतः पेट्रोलियम उत्पादों में उल्लेखनीय दमित मुद्रास्फीति के कारण कम रहा है। यह भी संभव है कि शेष विश्व से निर्यातकों ने भारत के बाजार में अपने हिस्से को बनाये रखने के लिए संभवतः प्रभाव के कुछ हिस्से का वहन किया होगा जिसके कारण संभवतः कम पास-थ्रू हुआ। मंद वैश्विक मांग की परिस्थितियों को देखते हुए शेष विश्व के निर्यातकों द्वारा बाजार के रुख के अनुसार कीमत निर्धारण के कारण मुद्रास्फीति पर अनुमानित पास-थ्रू में कमी आ सकती है।

संदर्भ

खुन्द्रक्पम, जीवन कुमार (2007), ''इकोनॉमिक रिफार्म एंड एक्सचेंज रेट पास-थ्रू टू डोमेस्टिक प्राइसेज इन इंडिया'', बीआईएस वर्किंग पेपर सं. 225.

भट्टाचार्या, रूद्राणी, इला पट्टनायक और अजय शाह (2008), ''एक्सचेंज रेट पास-थ्रू इन इंडिया'', http://macrofinance.nipfp.org.in/PDF/BPS2008_erpt.pdf पर उपलब्ध.

मल्लिक, शुशांत और हेलेना मर्कुएस (2008), ''पास-थ्रू ऑफ एक्सचेंज रेट एंड टैरिफ इंटु इंपोर्ट प्राइसेज ऑफ इंडिया : करेंसी डिप्रिसिएशन वर्सेज इंपोर्ट लिबरलाइजेशन'', रिव्यू ऑफ इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स, 16(4): 765-782.

है (चार्ट II.19)। विभिन्न राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में वेतन-मूल्य के संबंधों में उल्लेखनीय अंतर है जो समस्त वेतन-मुद्रास्फीति-सिद्धांतों को आगे ले जाने में राज्य विशेष की भूमिका की ओर संकेत करती है(चार्ट II.20)। वास्तविक वेतन में बढ़ोत्तरी संकेत देती है कि श्रमजीवी जनसंख्या के लिए मुद्रास्फीति हमेशा परेशानी नहीं लाती, विशेषकर जब वेतन में बढ़ोत्तरी उत्पादन की वृद्धि से ज्यादा हो।

चार्ट II.19: वेतन और स्टाफ लागत की प्रवृत्ति

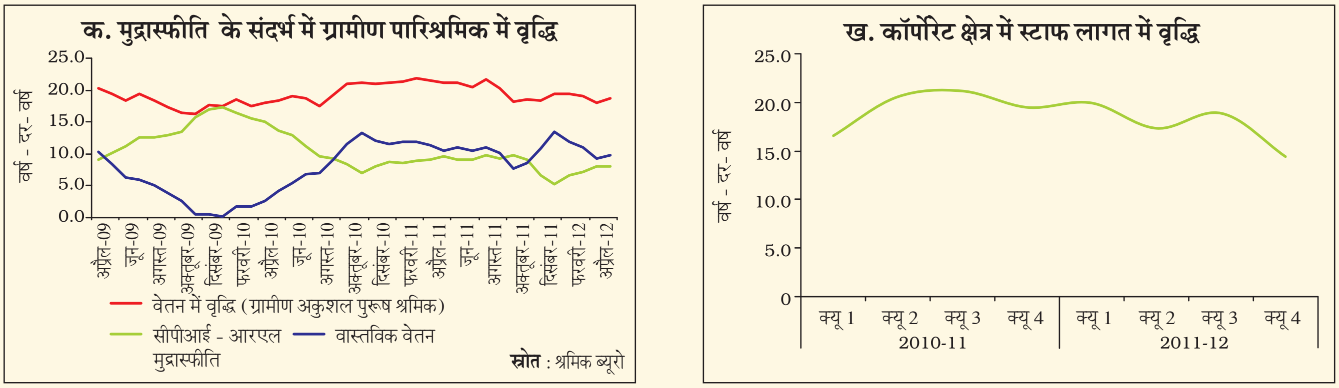

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (एमजीएनआरईजीएस) के लागू होने के बाद वेतन की ओर से मुद्रास्फीति पर दबाव स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है क्योंकि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम वेतन तय की गयी है जो मुद्रास्फीति के साथ बढ़ती जाती है (बॉक्स II.8)।

नया उपभोक्ता मूल्य सूचकांक संकेत देता है कि 'खाद्य से इतर तेल से इतर श्रेणी में' में मुद्रास्फीति अधिक है और अधिकांश दबाव सेवा क्षेत्रों पर दिखायी दे रहा है

II.2.19 हालांकि रिज़र्व बैंक मौद्रिक नीति के संचालन के लिए थोक मूल्य सूचकांक के आधार पर मुद्रास्फीति दृष्टिकोण को प्रस्तृत करने की व्यवस्था को चालू रखे हुए है वहीं मुद्रास्फीति का आकलन हमेशा थोक मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के विभिन्न उपायों पर किया जाता रहा है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक पर अन्य देशों की निर्भरता की अपेक्षा थोक मूल्य सूचकांक पर अत्यधिक निर्भरता बेहतर आंकड़ों की उपलब्धता को दर्शाते हैं जो थोड़े अंतराल पर आंकड़ों की उपलब्धता (साप्ताहिक शृंखला के बंद होने तक), पण्यों के विस्तृत समूह और अद्यतन आधार वर्ष के कारण हैं। नजदीक के आधार वर्ष (वर्ष 2010=100) वाले उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर जनवरी 2012 से मुद्रास्फीति संख्या उपलब्ध हो गयी है। हालांकि, नई शृंखला में थोक मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के अन्य उपायों में तुलनात्मक तौर पर स्तर और समग्र प्रवृत्ति के संदर्भ में उल्लेखनीय अंतर पाया गया है (चार्ट II.21)। हालांकि विभिन्न

चार्ट II.20: ग्रामीण मजदूर (सीपी-आरएल) और ग्रामीण वेतन के लिए सीपीआई में बढ़ोतरी *

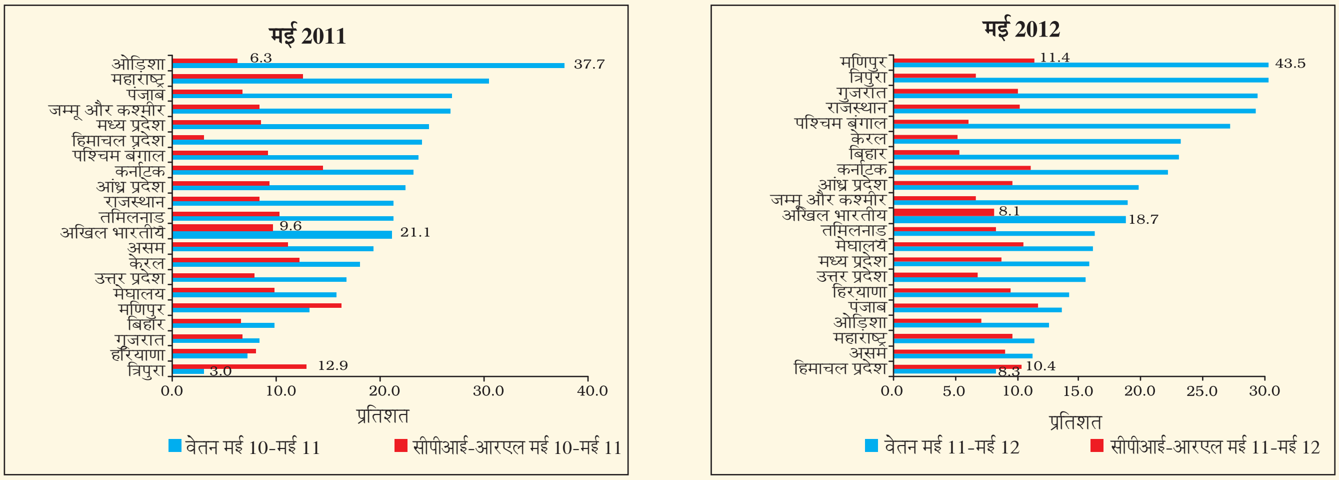

* : ग्रामीण अकुशल श्रमिक (पुरूष) की दैनिक मजदूरी दर

स्रोत : श्रमिक ब्यूरो

बॉक्स II.8
वेतन-कीमत चक्र का जोखिम : भारत के अनुभवजन्य साक्ष्य क्या दर्शाते हैं

वेतन के निरंतर दबावों के कारण होने वाली लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति हमेशा ही मुद्रास्फीति का मुख्य सैद्धांतिक निर्धारक बनी रही, हालांकि समय-समय पर मुद्रास्फीति के स्वतंत्र निर्धारक के तौर पर वेतन के दबावों औचित्य की कड़ी अनुभवजन्य जांच की गयी। वेतन में बढ़ोत्तरी के कारण हुई मुद्रास्फीति तब होती है जब सांकेतिक वेतन दर वृद्धि श्रम उत्पादकता और फर्मों की वृद्धि से अधिक हो जाती है तो वे अपने लाभ मार्जिन में कमी करने के बजाय उच्च वेतन लागत की भरपाई के लिए कीमतों में वृद्धि कर देते हैं। जैसे ही कर्मचारी ज्यादा मजदूरी पाते हैं तो वे वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ा देते हैं और मुद्रास्फीति बढ़ जाती है और कुछ समय बाद वे और अधिक वेतन की मांग करते हैं। इसके कारण वेतन-कीमत चक्र का निर्माण होता है।

पारंपरिक विवेक यह बताता है कि श्रम बाजार के कार्यकलाप मुद्रास्फीति के प्रमुख संकेतक हो सकते हैं। बेरोजगारी की स्वाभाविक दर की तुलना में बेरोजगारी दर में कमी अर्थव्यवस्था में ओवरहिटिंग का संकेत है और जिसके कारण उच्च वेतन मुद्रास्फीति और हेडलाइन मुद्रास्फीति हो सकती है। इस प्रकार वेतन-कीमत मुद्रास्फीति का सामान्य निर्धारक श्रम बाजार की परिस्थितियां हैं। इसलिए वेतन मुद्रास्फीति और कीमत मुद्रास्फीति एक तरह के उतार-चढ़ाव का प्रदर्शन करते हैं और उनमें दो-दिशायुक्त कारण-कार्य-संबंध भी हो सकता है; किंतु सकारात्मक आऊटपुट-अंतर और श्रम बाजार की कठिन परिस्थितियों से अलग वेतन-कीमत चक्र को बनाए रखना कठिन हो सकता है।

अनुभवजन्य साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि बेरोजगारी की दर ऊंची होने के बावजूद वेतन में बढ़ोत्तरी हुई है, इसका तात्पर्य यह है कि वेतन मुद्रास्फीति बेरोजगारी की प्रवृत्तियों पर कम प्रतिक्रिया दिखाती है। ऐसे भी प्रसंग रहे हैं जहां संवृद्धि में ज्यादा सुधार न होने के बावजूद बेरोजगारी में कमी आयी है (बेनार्के की हाल की पहेली) और उच्च संवृद्धि के बावजूद रोजगार का सृजन अपर्याप्त मात्रा में हुआ है (भारत में रोजगार-रहित संवृद्धि के संबंध में चिंताएं)। इसके अलावा, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में अधिक बेरोजगारी के साथ-साथ कभी-कभी रोजगार के लिए घोषित रिक्तियों में भी वृद्धि हुई है, जो बेवरिज़ वक्र (जो बेरोजगारी दर और रिक्ति दर के बीच संबंधों को दर्शाता है) में ऊर्ध्वगामी परिवर्तन का संकेत देती है। प्रायः यह खुली रिक्तियों के लिए कुशलता की आवश्यकता और बेरोजगारों के पास उपलब्ध कुशलता के बीच अंतर को दर्शाता है। इसलिए जब कुशलता के लिए ज्यादा प्रीमियम देना पड़ता है तो अधिक बेरोजगारी होने के बावजूद वेतन में बढ़ोत्तरी हो सकती है। जब तक कुशलता अंतर बना रहेगा, वेतन में बढ़ोत्तरी जारी रहेगी। मजदूरी के कारण मुद्रास्फीति का एक अन्य प्रमुख कारक वेतन इंडेक्शेसन भी हो सकता है, और इस मामले में वेतन में बढ़ोत्तरी मुद्रास्फीति का स्वतंत्र निर्धारक हो सकता है।

कभी-कभी, एक देश मुद्रास्फीति पर लगाम लगाने के लिए कठिन विकल्प चुनने के बजाय आम आदमी के लिए उच्च मुद्रास्फीति की लागत की सीमा में रखने के लिए वेतन इंडेक्सेशन जैसे आसान विकल्प का चुनाव कर सकता है। किंतु इस प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के सामने अन्य जोखिमें आ सकती है। ऐसा पहला जोखिम है ''.......... इंडेक्शेसन के कारण नीतिनिर्धारकों की मुद्रास्फीति से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है'' (बॉल और सच्चेत्ति, 1989)। जैसा कि ओकुन (1971) ने रेखांकित किया है कि वेतन इंडेक्शेसन ''से यह माना जाए कि सरकार ने मुद्रास्फीति के प्रति अपने सहिष्णुता स्तर को बढ़ा दिया है .... इस बात की अपेक्षा करना तर्कसंगत होगा कि सरकार जितने प्रभावी तरीके से मुद्रास्फीति की सामाजिक लागतों (इंडेक्शेसन के माध्यम से) को कम कर सकती है, वह उतनी ही अधिक मुद्रास्फीति को स्वीकार करेगी''। दूसरे, वेतन इंडेक्शेसन वेतन रिजिडिटी के नियंत्रण को बढ़ा देती है और विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादकता की प्रवृत्ति के सापेक्ष वेतन का अपेक्षित समायोजन नहीं होने के कारण संसाधनों का गलत आबंटन हो सकता है। किसी अवस्फीति नीति योजना में, मजदूरी का सांकेतिक अधोगामी रिजिडिटी बहुत बड़ा अवरोध है जो वेतन इंडेक्शेसन के साथ और ज्यादा बढ़ सकता है। वेतन की वास्तविक वृद्धि दर को उत्पादकता वृद्धि की दर से नीचे रखना दीर्घावधि संवृद्धि और बाह्य प्रतिस्पर्धा दोनों के लिए आवश्यक है। मिहल्जेक और सक्सेना (2010) ने यह पाया है कि कुशल श्रमिकों की कमी और सार्वजनिक क्षेत्र की वेतन नीतियां वे दो कारक हैं जिसके कारण उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में वास्तविक वेतन उत्पादकता से आगे जा सकती है।

भारत में , महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना के लागू होने के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में वेतन में वृद्धि की दर मुद्रास्फीति की अपेक्षा तेजी से बढ़ी। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि संवृद्धि 4 प्रतिशत के लक्ष्य के नीचे बनी रही, लेकिन वास्तविक वेतन अधिक दर से बढ़ी। शहरी क्षेत्रों में हाल के वर्षों में कमजोर आऊटपुट संवृद्धि के बावजूद वेतन में वार्षिक बढ़ोत्तरी तेज रही। कुल मानव-श्रम को रोजगार देने के संदर्भ में महात्मा गांधी राष्ट्री ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना का कवरेज इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होगा जो आय अंतरण के कारण उत्पन्न होने वाले मांग दबावों से मुद्रास्फीति पर दबाव बना सके। किंतु , महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना के कारण मुद्रास्फीतिकारक जोखिम सामने आ रहे हैं जो समग्र वेतन ढांचे पर दबाव डाल रहा है और वेतन इंडेक्शेसन के कारण हर वर्ष वेतन में बढ़ोत्तरी भी कर रहा है। भारत में सामने आ रहे वेतन-कीमत चक्र के जोखिम ग्रामीण मजदूरी पर उपलब्ध सीमित आंकड़ों और औद्योगिक क्षेत्र के वेतन संबंधी आंकड़ों का प्रयोग कर अनुभवजन्य अध्ययन किया जा सकता है। ग्रामीण अकुशल श्रमिकों के लिए मासिक वेतन और उपभोक्ता ग्रामीण श्रमिकों का मुद्रास्फीति (श्रमिक ब्यूरों से उपलब्ध) पर आधारित अनुभवजन्य आकलन संकेत करते हैं कि वेतन मुद्रास्फीति और मूल्य मुद्रास्फीति (सारणी 1) के बीच के दो-दिशायुक्त कारण-कार्य-सिद्धांत का तात्पर्य यह है कि वेतन-कीमत चक्र का साक्ष्य मौजूद है।

सारणी 1: ग्रामीण भारत में वेतन और मुद्रास्फीति के बीच कार्यत्मक संबंध

नमूना : मई 2001 से फरवरी 2012

शून्य परिकल्पना:	एफ- सांख्यिकीय	संभाव्यता
मूल्य में परिवर्तन में गैंगर कारण-कार्य वेतन परिवर्तन नहीं	5.77	0.004
वेतन में परिवर्तन में गैंगर कारण-कार्य मूल्य परिवर्तन नहीं	2.88	0.060

संगठित विनिर्माण क्षेत्र में , प्रति कर्मचारी औसत वेतन 2000-01 से 2005-06 के दौरान 3.9 प्रतिशत वार्षिक के मामूली दर से बढ़ी जो 2006-07 से 2009-10 के दौरान बढ़कर 9.3 प्रतिशत हो गई। वेतन-कीमत चक्र पर उपलब्ध साक्ष्य आंशिक तौर पर मुद्रास्फीति के उतार-चढ़ाव को दर्शाते हैं और बतलाते हैं कि संवृद्धि की गति में चक्रीय कमी के कारण मुद्रास्फीति में कमी क्यों नहीं आती है।

संदर्भ

बॉल, लॉरेंस और स्टीफन जी. सच्चेत्ति(1989), ''वेज इंडेक्शेसन एंड टाइम-कंसिस्टेंट मॉनिटरी पॉलिसी,'' एनबीईआर वर्किंग पेपर 2948, नेशनल ब्यूरो ऑफ इॅकोनामिक रिसर्च.

मिहल्जेक, दुब्रक्को और श्वेता सक्सेना (2010), ''वेजेज, प्रोडक्टिविटी एंड ''स्ट्रक्चरल'' इनफ्लेशन इन इमर्जिंग मार्केट इकोनामिस'', बीआईएस वर्किंग पेपर नं. 49, बीआईएस.

ऑकुन, आर्थर एम. (1971), ''द मिरेज ऑफ स्टिडी इनफ्लेशन'' ब्रुकिंग पेपर ऑन इकोनॉमिक्स एक्टिविटि, खंड 2, 485-98.

चार्ट II.21: थोक मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति

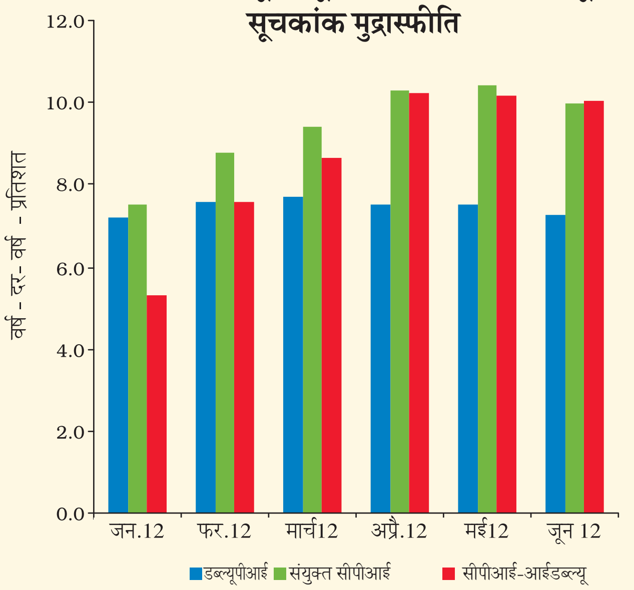

सूचकांक के कवरेज, भार और मूल्य उद्धरण में भिन्नता के कारण कुछ अंतर की अपेक्षा की गई थी। कम हो रही संवृद्धि के वातावरण में ऊपर जा रही मुद्रास्फीति की दिशा से यह सवाल उठ रहा है कि क्या खुदरा स्तर पर कीमतों में गिरावट थोक स्तर की तुलना में धीमी गति से आ रही है। अधिक उतार-चढ़ाव वाले घटकों को निकालकर यदि मांग स्थिति की तुलना में मूल्य स्थिति के व्यवहार का आकलन करने पर यह पाया गया कि 'खाद्य से इतर एवं तेल से इतर' उपभोक्ता मूल्य सूचकांक - अखिल भारतीय मुद्रास्फीति थोक मूल्य सूचकांक के 'खाद्य से इतर और तेल से इतर' मुद्रास्फीति से अधिक रही (सारणी II.3)। सेवाओं और किराए के साथ-साथ खुदरा स्तर पर उद्धृत की जा रही कीमतें इस विचलन की व्याख्या करती हैं। उच्च

सारणी II.3: डब्ल्यूपीआई और नए सीपीआई (संयुक्त) मुद्रास्फीति

	खाद्य		ईंधन		खाद्य और ईंधन को छोड़कर		समग्र	
	डब्ल्यूपी आई	नया सीपी आई	डब्ल्यूपी आई	नया सीपी आई	डब्ल्यूपी आई	नया सीपी आई	डब्ल्यूपी आई	नया सीपी आई
1	2	3	4	5	6	7	8	9
भार	*24.3*	*47.6*	*14.9*	*9.5*	*60.8*	*42.9*	*100*	*100*
जन-12	1.5	3.9	17.0	13.0	7.5	10.6	7.2	7.5
फर-12	5.9	6.7	15.1	12.8	6.3	10.4	7.6	8.8
मार्च-12	8.7	8.1	12.8	11.8	5.8	10.2	7.7	9.4
अप्रै-12	9.1	10.1	12.1	11.2	5.4	10.2	7.5	10.3
मई-12	9.0	10.5	11.5	10.7	5.7	10.1	7.5	10.4
जून-12	9.0	10.8	10.3	10.3	5.6	9.1	7.3	10.0

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति संकेत करती है कि उपभोक्ता कल्याण की दृष्टि से मुद्रास्फीति की लागत थोक मूल्य सूचकांक की प्रवृत्ति में परिलक्षित मुद्रास्फीति की लागत से अधिक है। जब तक नए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की लम्बी अवधि के आंकड़े प्राप्त नहीं हो जाते तब तक समष्टि आर्थिक के प्रमुख अन्य परिवर्तियों के संबंध में इसके व्यवहार का आकलन नहीं किया जा सकता है। ऐसे समय तक, मौद्रिक नीति उद्देश्यों के लिए नए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के सूचना भंडार का संपूर्ण आकलन कठिन है, लेकिन नए सूचकांक को खुदरा स्तर पर मूल्य की प्रवृत्ति के लिए अतिरिक्त साक्ष्य के तौर पर देखा जा रहा है।

वर्ष 2012-13 में मुद्रास्फीतिकारक दबाव के बने रहने की संभावना है

II.2.20 भविष्य में, संवृद्धि में कमी के कारण मांग दबाव में कमी के बावजूद अपर्याप्त मानसून और न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोत्तरी के कारण मुद्रास्फीति के समक्ष जोखिम बना हुआ है। 15 अगस्त 2012 तक मानसून में दीर्घावधि औसत से 15 प्रतिशत की कमी रही। रिज़र्व बैंक के उत्पादन भारित सूचकांक ने मानसून में 20 प्रतिशत की कमी दर्शायी है। जुलाई के अंतिम भाग में बुआई में उल्लेखनीय तेजी आई लेकिन मोटे अनाज, दलहल और कुछ तिलहन विशेषकर मूंगफली की बुआई में कमी बनी हुई है। बुआई में कमी कीमतों पर दबाव डाल सकती है। अमेरीका, यूरेशिया और आस्ट्रेलिया के कई हिस्से की सूखे के कारण खाद्य की वैश्विक कीमतों पर पहले ही दबाव बढ़ रहा है, आयात के माध्यम से मांग-आपूर्ति अंतर को कम करने की अपनी सीमा है। इस स्थिति में बड़ी मात्रा में भंडार किए गए खाद्य के पिछले और वर्तमान स्टॉक बड़े काम आ सकते हैं। हालांकि इसके प्रभावी वितरण और प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए सघन प्रयास की आवश्यकता होगी।

II.2.21 खाद्य मुद्रास्फीति में बढ़ोत्तरी की संभावना को देखते हुए मूल्य दबावों के प्रभाव-विस्तार और इसके व्यापकीकरण को रोकना वर्तमान संदर्भ में महत्वपूर्ण है। यद्यपि 2012-13 की पहली तिमाही के दौरान मूल मुद्रास्फीकारक दबाव नहीं के बराबर रहा, फिर भी इसका जोखिम बना रहा। वास्तविक वेतन और खाद्य पदार्थों की कीमतों के आघात का प्रभाव मूल मुद्रास्फीति पर पड़ सकता है। 2012-13 की पहली तिमाही के दौरान धातु और ऊर्जा के वैश्विक मूल्यों में गिरावट ने कुछ राहत प्रदान की लेकिन रुपये के अवमूल्यन और वैश्विक ऊर्जा और खाद्य पदार्थों की कीमतों में हाल की बढ़ोत्तरी से इस लाभ का प्रभाव आंशिक तौर पर कम हो गया। इस परिप्रेक्ष्य में संवृद्धि में कमी के बावजूद लगातार मुद्रास्फीति का बना रहना मौद्रिक नीति के लिए एक प्रमुख चुनौती बन कर उभरा है।

II.3 मुद्रा और ऋण

II.3.1 वर्ष 2011-12 में मौद्रिक और ऋण की स्थितियों में दो स्पष्ट विशेषताएं देखी जा सकती है। वर्ष के पहले भाग में मौद्रिक नीति कठोर थी। निवल मांग और मीयादी देयताओं से 1 प्रतिशत की सामान्य कमी को बनाए रखने की नीतिगत उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए चलनिधि की मात्रा बरकरार रही जिससे मौद्रिक नीति के प्रभाव का अंतरण अत्यधिक प्रभावी तरीके से होता है। मौद्रिक नीति का लक्ष्य मुद्रास्फीति को रोकना है और चलनिधि की अधिक मात्रा को इस दिशा में रोड़ा माना जाता है क्योंकि यह अधिक मांग के माध्यम से कीमतों पर प्रभाव डाल सकती है। वर्ष के दूसरे भाग में रिज़र्व बैंक ने चल रही कठोर मौद्रिक नीति को विराम दिया। हालांकि, कुछ अप्रत्याशित कारणों से चलनिधि की कमी में बढ़ोत्तरी हुई। रिज़र्व बैंक ने रुपये के विनिमय दर में उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए पहले डॉलरों की बिक्री की। दूसरे, सरकार के नकदी शेष राशि में अचानक वृद्धि के कारण अस्थायी असंतुलन आ गया जो लंबे समय तब बनी रही। तीसरे, वर्ष की पहली तीन तिमाहियों में ऋण और जमाराशियों में हुई वृद्धि के बीच कम हुआ अंतर चौथी तिमाही में समग्र जमाराशियों में तीव्र गिरावट और ऋण में आए अचानक उछाल के कारण दुबारा बढ़ गया।

II.3.2 हेडलाइन मुद्रास्फीति वर्ष 2009 के अधिकांश समय में कम रहने के बाद अगले दो वर्ष 2010 और 2011 में औसतन लगभग 9.5 प्रतिशत रही। इस चुनौती से निबटने के लिए रिज़र्व बैंक ने फरवरी 2010 से अक्तूबर 2011 तक मुद्रास्फीतिरोधी रुख अपनाते हुए विभिन्न चरणों में परिचालन नीतिगत रेपो दरों में कुल 525 आधार अंकों तथा आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर) में कुल 100 आधार अंकों की बढ़ोत्तरी की। नीतियों में कठोरता लाना आवश्यक था क्योंकि मुद्रास्फीति जोखिम संवृद्धि के प्रति जोखिम से अधिक हो गयी थी और यह संवृद्धि पर प्रतिकूल असर डालती। मौद्रिक नीति कार्रवाई के कारण जैसे ही घरेलू मांग में कुछ हद तक कमी आयी, हेडलाइन मुद्रास्फीति में गिरावट देखी गयी। भविष्य के आकलनों को ध्यान में रखते हुए जब यह पाया गया कि संवृद्धि में मंदी अपेक्षाओं से अधिक है तब रिज़र्व बैंक ने 2011-12 की तीसरी तिमाही में मौद्रिक नीति को अपरिवर्तित रखने का संकेत दिया। खुले बाजार परिचालन के तहत एकमुश्त खरीद कर के चलनिधि की मात्रा बढ़ाई गयी। तत्पश्चात, रिज़र्व बैंक ने संवृद्धि में हो रही कमी को ध्यान में रखते हुए अप्रैल 2012 में नीतिगत दरों में कटौती की। अगस्त 2012 में, रिज़र्व बैंक ने उत्पाद क्षेत्रों के लिए ऋण उपलब्धता आसान बनाने के लिए चलनिधि उपलब्ध कराने की दृष्टि से सांविधिक चलनिधि अनुपात में 1 प्रतिशत अंक की कटौती की।

निवल घरेलू आस्तियों (एनडीए) में हुई बढ़ोत्तरी निवल विदेशी आस्तियों (एनएफए) में आयी कमी से प्रति संतुलित हो गयी; वर्ष 2011-12 के दौरान आरक्षित मुद्रा में वृद्धि की गति धीमी रही

II.3.3 चलनिधि के स्वतंत्र कारकों से आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए 2011-12 के दौरान आरक्षित मुद्रा में घट-बढ़ में रिज़र्व बैंक के चलनिधि प्रबंधन के प्रतिसंतुलन परिचालनों को दर्शाते हैं (चार्ट II.22 और परिशिष्ट सारणी 9)। वर्ष के दौरान, स्वतंत्र कारकों जैसे कि सरकार के नकदी-शेष, रिज़र्व बैंक के विदेशी मुद्रा परिचालन और जनता के पास इकट्ठा मुद्रा के परिणामस्वरूप बैंकिंग प्रणाली से चलनिधि बाहर निकली। रिज़र्व बैंक द्वारा बड़े स्तर के खुले बाजार परिचालन के माध्यम से 1.3 ट्रिलियन रुपये की सरकारी प्रतिभूति की एकमुश्त खरीद और दैनिक चलनिधि समायोजन सुविधा के संचालन किए जाने के परिणामस्वरूप निवल घरेलू आस्ति में बढ़ोत्तरी हुई। विदेशी मुद्रा बाजार में रिज़र्व बैंक द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के कारण निवल विदेशी आस्ति में गिरावट से आरक्षित मुद्रा संवृद्धि में कमी आयी। आरक्षित मुद्रा में यह कमी चौथी तिमाही में आरक्षित नकदी निधि अनुपात में कटौती के कारण और अधिक बढ़ गयी क्योंकि पहले चरण में रिज़र्व बैंक के पास रखी जाने वाली

चार्ट II.22: आरक्षित मुद्रा में वृद्धि

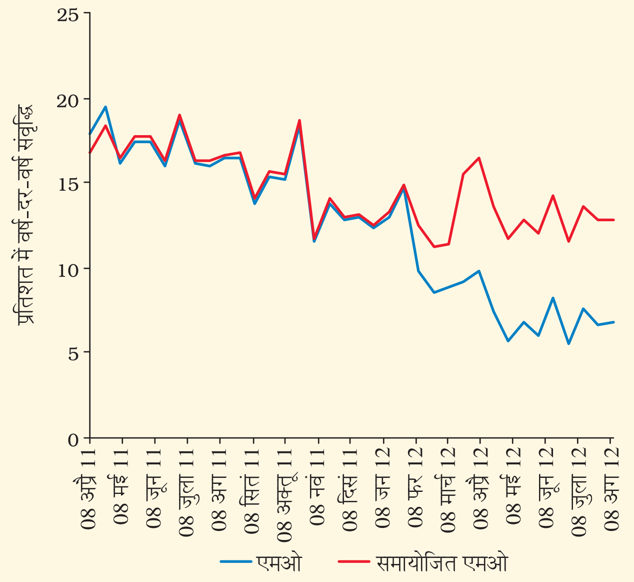

जमाराशियों में 795 बिलियन रुपये की कमी आयी। 2011-12 के दौरान आरक्षित नकदी निधि अनुपात में समायोजन के बाद भी आरक्षित मुद्रा की संवृद्धि में कमी आयी।

II.3.4 आरक्षित मुद्रा का सबसे बड़ा हिस्सा संचलन में गयी मुद्रा होती है जिसमें आर्थिक कार्यकलाप और मुद्रास्फीति के आयी कमी के कारण 2011-12 में गिरावट आयी। जमाराशियों पर मिलने वाले ब्याज दरों में संचयी वृद्धि होने के कारण अप्रयुक्त राशि को रखने संबंधी अवसर लागत में बढ़ोत्तरी हो गयी जिससे नकद राशियां रखने की प्रवृत्ति घरेलू बचत में बदल गयी।

II.3.5 सरकार के बढ़े हुए व्यय के कारण वर्ष 2011-12 के पहले भाग में चलनिधि की कमी रिज़र्व बैंक के प्रत्याशित स्तर के भीतर रही। सरकार ने अकसर अर्थोपाय अग्रिम के साथ-साथ कभी-कभी ओवरड्राफ्ट का सहारा भी लिया। फलस्वरूप, वर्ष के पहले भाग में विवेकाधीन दीर्घकालिक चलनिधि को प्रणाली में लाने की आवश्यकता नहीं हुई।

II.3.6 नवंबर 2011 से आरक्षित मुद्रा (आरक्षित नकदी निधि अनुपात के साथ समायोजित) की वृद्धि में गिरावट चलनिधि के स्वतंत्र और नीतिगत कारकों में प्रतिसंतुलित उतार-चढ़ाव को दर्शाते हैं। रिज़र्व बैंक ने चलनिधि के संरचनात्मक कारकों- पिछली तिमाही की तुलना में विदेशी मुद्रा बिक्री और मुद्रा की बढ़ी हुई मांग- से होने वाली चुनौती से निपटने के लिए खुले बाजार परिचालन के माध्यम से बिक्री और आरक्षित नकदी निधि अनुपात में कटौती कर चलनिधि का अंतर्वेशन किया। स्वायत चलनिधि की अस्थायी समस्या -सरकार के नकदी शेष में वृद्धि- को चलनिधि समायोजन सुविधा/सीमांत स्थायी सुविधा के तहत एक दिवसीय चलनिधि का प्रावधान करके दूर किया गया। सरकार के नकदी शेष में मौसमी गिरावट, जमाराशियों और ऋण वितरण के वृद्धि की गति के अंतर कम होने, चलनिधि समायोजन सुविधा/ सीमांत स्थायी सुविधा के माध्यम से रिज़र्व बैंक के सक्रिय प्रबंधन के कारण 2012-13 के दौरान अब तक चलनिधि समायोजन सुविधा के तहत चलनिधि घाटे में कमी आयी। रिज़र्व बैंक के चलनिधि प्रबंधन परिचालनों पर अध्याय III में विस्तृत चर्चा की गई है।

व्यवहारवादी और नीतिगत कारकों के परिणामस्वरूप उच्च मुद्रा गुणक सामने आए

II.3.7 वर्ष 2011-12 में आरक्षित मुद्रा में गिरावट मुख्य तौर पर मुद्रा की मांग में कमी के कारण आयी। मुद्रा गुणक का मूल्य दो व्यवहारवादी अनुपातों - मुद्रा-जमा अनुपात और आरक्षित-जमा अनुपात पर निर्भर करता है। 2011-12 की पहली तीन तिमाहियों में मौद्रिक स्थितियों की कठोरता पर कार्रवाई करने में बैंकों और घरेलू क्षेत्र की प्रतिक्रिया से मुद्रा गुणकों के मूल्य में बढ़ोत्तरी हुई (चार्ट II.23)। वर्ष 2011-12 के दौरान, जनवरी 2012 में आरक्षित निधि नकदी अनुपात में 50 आधार अंकों की कटौती के कारण 24 फरवरी 2012 को समाप्त पखवाड़े में मुद्रा गुणक उच्चतम स्तर तक चला गया, जिसके कारण बैंकों द्वारा रिज़र्व बैंक के पास रखी जाने वाली निधियों में कटौती हुयी। 10 मार्च 2012 से शुरू हो रहे पखवाड़े से आरक्षित निधि नकदी अनुपात में 75 आधार अंकों की दूसरी कटौती के कारण हाल में मुद्रा गुणक में और अधिक बढ़ोत्तरी हुई।

चार्ट II.23: मुद्रा गुणक

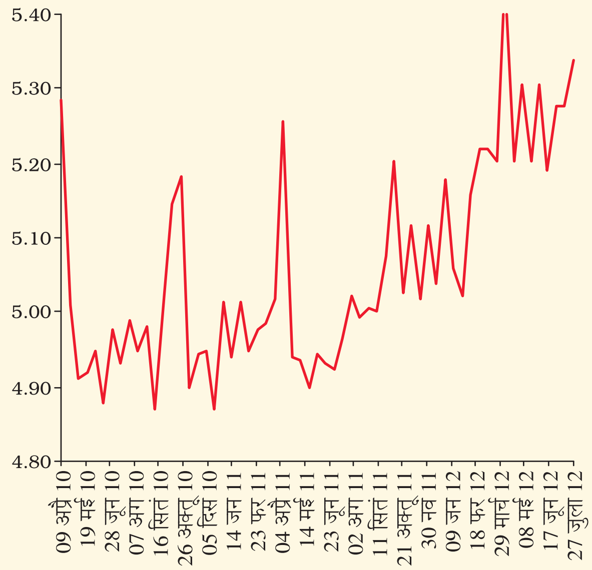

II.3.8 किंतु, मुद्रा गुणक में बढ़ोतरी आरक्षित मुद्रा में तीव्र गिरावट को प्रति-संतुलित नहीं कर पायी और मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि पिछले वर्ष की 16.1 प्रतिशत की तुलना में घटकर मार्च 2012 के अंत तक 13.1 प्रतिशत हो गयी (चार्ट II.24)। मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि में थोड़ी तेजी आयी जो 27 जुलाई 2012 को 13.5 प्रतिशत पहुंच गयी लेकिन यह रिज़र्व बैंक के 15 प्रतिशत की सांकेतिक सीमा रेखा के थोड़ी नीचे रही।

व्यापक मुद्रा की वृद्धि में तेजी बनी हुई है, लेकिन चौथी तिमाही में जमाराशि संवृद्धि में गिरावट के कारण इसमें नरमी आयी

II.3.9 मुद्रा, संवृद्धि और मूल्य के बीच सामंजस्य मुद्रा की मांग की स्थिरता पर निर्भर करती है। अनुभवजन्य आंकड़े यह संकेत देते हैं

चार्ट II.24: व्यापक मुद्रा और आरक्षित मुद्रा में संवृद्धि (वर्ष-दर-वर्ष; प्रतिशत)

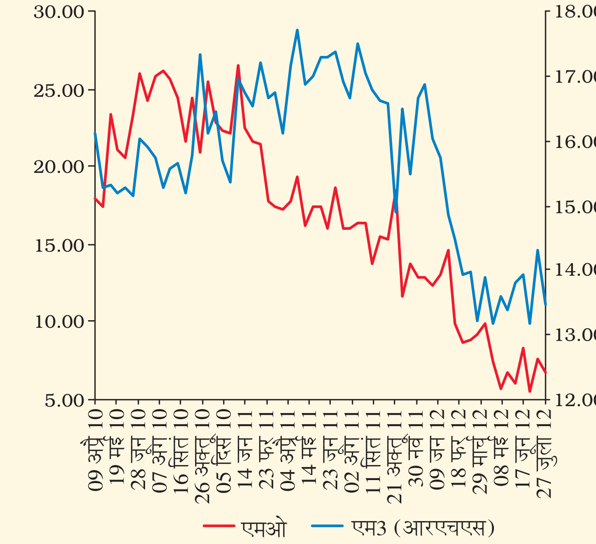

कि भारत में मुद्रा की मांग दीर्घावधि और मध्यावधि में स्थिर रही है (बॉक्स II.9)।

II.3.10 वर्ष 2011-12 की तीसरी तिमाही में व्यापक मुद्रा (एम$_3$) में बढ़ोत्तरी की दर वर्ष के अंत तक आनुमानिक दर से 15.5 प्रतिशत अधिक रही जिसमें अस्थायी और संरचनात्मक चलनिधि की कमी की दूर करने के लिए अपर्याप्त मात्रा में चलनिधि के निर्माण और अंशतः धीमी संवृद्धि और मुद्रास्फीति के कारण जनवरी 2012 के मध्य से तीव्र गिरावट आयी। व्यापक मुद्रा के सभी घटकों में 2011-12 के दौरान गिरावट देखी गयी (परिशिष्ट सारणी 10)। पहली तीन तिमाहियों में मीयादी जमाराशियों में तीव्र वृद्धि देखी गयी क्योंकि रिज़र्व बैंक की मुद्रास्फीति निवारक मौद्रिक नीति से निपटने में मीयादी जमाराशियों पर मिलने वाली ब्याज के कारण नकदी पास रखने या मांग जमाराशियों की अवसर लागत में बढ़ोत्तरी हुई। घरेलू वित्तीय बचत के अन्य घटकों जैसे छोटी

बॉक्स II.9
मुद्रा की मांग

मौद्रिक नीति के संचालन के लिए सूचना परिवर्ती घटक के तौर पर मुद्रा का महत्व उसके निर्धारक के संदर्भ में उसकी मांग की स्थिरता पर निर्भर करता है। भारत द्वारा 1998 में 'फीडबैक के साथ मौद्रिक लक्ष्य' बनाने का प्रयोग छोड़ देने के बावजूद, जहां व्यापक मुद्रा (एम$_3$) को मौद्रिक नीति के मध्यवर्ती लक्ष्य के तौर पर प्रयोग किया जाता था, मौद्रिक नीति के निरूपण में सामान्य तौर पर मौद्रिक समुच्चय और विशेष तौर पर मौद्रिक समूहों और व्यापक मुद्रा अभी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

संवृद्धि और मुद्रास्फीति पर अपने पूर्वानुमानों के समनुरूप, रिज़र्व बैंक प्रत्येक वित्तीय वर्ष की शुरुआत में वित्तीय वर्ष की व्यापक मुद्रा (एम$_3$)वृद्धि के आकलन के लिए व्यापक मुद्रा की वृद्धि पर अपने पूर्वानुमान देता है। संवृद्धि -मुद्रास्फीति सिद्धांतों के कार्यान्वयन में किसी भी प्रकार के बदलाव के फलस्वरूप मौद्रिक पूर्वानुमानों में भी बदलाव आता है। यह मुद्रा के स्थिर मांग का अनुमान करता है। व्यापक मुद्रा के प्रारंभिक पूर्वानुमान और अंतिम परिणाम के बीच किसी भी प्रकार का अंतर न केवल संवृद्धि और मुद्रास्फीति - मुद्रा की मांग के संबंध में निकटवर्ती निर्धारक - के पूर्वानुमान की सटीकता पर बल्कि मुद्रा मांग कार्यप्रणाली की स्थिरता पर भी निर्भर करता है। मुद्रा, मूल्य और आय के बीच दो दिशायुक्त अनौपचारिक संबंध है जिसे 'फीडबैक के साथ मौद्रिक लक्ष्य बनाने' के दृष्टिकोण में देखा गया।

मुद्रा मांग कार्यप्रणाली की स्थिरता को अब दुबारा परखने के लिए कौन से कारक कार्य कर रहे हैं, क्या सांकेतिक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की तर्ज पर हाल के वर्षों में मुद्रा की वृद्धि में गिरावट इसका कारण है (चार्ट 1)। क्या इसका तात्पर्य यह है कि वित्तीय अमध्यस्थीकरण के कारण मुद्रा की मांग में अस्थिरता आयी है जिसने मुद्रा लक्ष्यों को अपनाने वाले अनेक देशों को इसे छोड़ने के लिए बाध्य किया? या क्या यह घरेलू वित्तीय बचत में गिरावट का परिणाम है क्योंकि घरेलू इकाइयों ने अपने पोर्टफोलियो को पुनःसंतुलित करने के लिए आस्तियों की

चार्ट 1: सांकेतिक सकल घरेलू उत्पाद और व्यापक मुद्रा की संवृद्धि दर

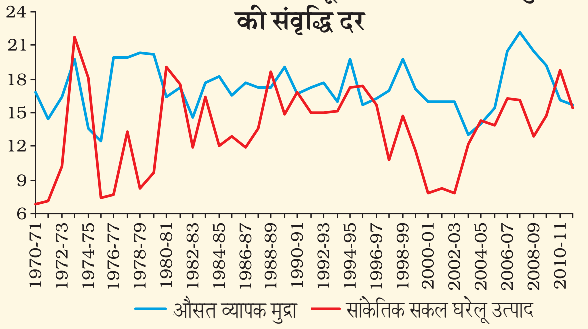

खरीद में ज्यादा रुचि ली परंतु जरूरत पर इन्हें सरलता से नकदी में नहीं बदला जा सकता है लेकिन ये ज्यादा प्रतिफल दर प्रदान करती हैं। इन मुद्दों की वजह से भारत में मुद्रा की मांग पर पुनःगौर करना आवश्यक हो गया है।

सैद्धांतिक तौर पर, मुद्रा की मांग मुख्य रूप से आय और मुद्रा रखने की अवसर लागत पर निर्भर करती है। जैसे ही वास्तविक आय बढ़ती है, वैसे ही बड़ी संख्या में हो रहे लेने-देने को वित्त प्रदान करने के लिए मुद्रा की मांग बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, वैकल्पिक आस्तियों पर उच्च वास्तविक प्रतिफल दर मुद्रा रखने की अवसर लागत को बढ़ा देती है, जिसके फलस्परूप मुद्रा की 'कल्पनिक' मांग में कमी आ जाती है।

नए वित्तीय लिखतों को लागू करके किए गए वित्तीय नवोन्मेष से भी मुद्रा की मांग पर असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, पूंजी खाते को उदार बनाने के उपाय

(जारी....)

के तौर पर 1994 में चालू खाते की पूर्ण परिवर्तनशीलता के कारण मुद्रा की मांग पर विनिमय दर और ब्याज की विदेशी दर का प्रभाव पड़ने की आशंका है।

भारतीय संदर्भ में मुख्यधारा के संबंधित साहित्य व्यापक मुद्रा को वास्तविक आय और मूल्य स्तर (उदाहरण, मोहंती और मित्रा (1999), रामचंद्रन (2004)) या वास्तविक आय और अल्पावधि सांकेतिक ब्याज दर (उदाहरण, राव और सिंह (2000)) के तौर पर परिभाषित करता है। अनुभवजन्य संबंधित साहित्य में मुद्रा मांग की स्थिरता पर लम्बी बहस हुई है और जिसपर मॉडल के ब्यौरे और विचार किए गए समय अवधि पर आधारित मिश्रित साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

मुद्रा की मांग के लिए 1970-71 से 2011-12 की अवधि के अनुभवजन्य जांच के अध्ययन से यह पता चलता है कि मुद्रा शेष, वास्तविक आय और मूल्य स्तर के बीच लम्बे समय तक बने रहने वाली सह-समन्वयी संबंधी है। मुद्रा मांग को वर्ष के व्यापक मुद्रा के औसत के तौर पर परिभाषित किया जाता है, वास्तविक आय को स्थिर बाजार मूल्यों पर सकल देशी उत्पाद के संदर्भ में मापा जाता है। मूल्य स्तर को थोक मूल्य सूचकांक का प्रयोग कर निकाला जाता है। ये सभी परिवर्ती सहज लॉग रूप में हैं। तदनुसार, दीर्घावधि मुद्रा मांग के लिए आकलन नीचे दिया जा रहा है:

व्यापक मुद्रा (एम$_3$) = 9.62 + 1.30 जीडीपी + 0.98 डब्ल्यूपीआई......(1)
(0.33405) (0.24515)

जहां कोष्ठक में दिए गए अंक आकलन की मानक त्रुटि को दर्शाते हैं।

5 प्रतिशत के स्तर पर गुणांक महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा मांग की आय लोच 1.3 अनुमानित है, जबकि मूल्य के स्तर पर एक प्रतिशत की बढ़ोत्तरी मुद्रा की दीर्घावधि मांग को लगभग उसी अनुपात में बढ़ा देती है। मानक जांच इन परिणामों की सटीकता की ओर संकेत करती है। उदाहरण के लिए, अन्य व्याख्यात्मक परिवर्ती घटक, वित्तीय नवोन्मेष के लिए परोक्षी, निधीयन के लिए वैकल्पिक स्रोत इत्यादि उपर्युक्त ब्यौरों में उल्लेखनीय दीर्घावधि संबंधों को नहीं दर्शाते हैं।

कुल मिलाकर अनुभवजन्य विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि विचाराधीन अवधि में भारत में मुद्रा की मांग (उक्त समीकरण 1) सामान्यतः स्थिर रही।

संदर्भ :

मोहंती,डी., ऐंड ए.के. मित्रा (1999), 'एक्सपीरिएंस विथ मॉनेटरी टार्गेटिंग इन इंडिया' *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 34 : 16-23.

रामचंद्रन, एम (2004) 'डू ब्राड मनी, आऊटपुट, एंड प्राइस स्टैंड फॉर ए स्टेबल रिलेशनशिप इन इंडिया' *जर्नल ऑफ पालिसी मॉडलिंग* 26 : 983-1001.

राव, बी.बी. एंड रूप सिंह (2006), 'डिमांड फॉर मनी इन इंडिया : 1953-2003' *एप्लाइड इकोनॉमिक्स, 38(11), 1319-1326.*

बचत राशियां और म्युचुअल फंड का विकल्प बनने के कारण भी मीयादी जमाराशियों में तीव्र वृद्धि देखी गयी। किंतु, 2011-12 की चौथी तिमाही के दौरान चलनिधि की कमी के कारण मीयादी जमाराशियों की वृद्धि में गिरावट आयी तथा आधारभूत प्रभाव के कारण गिरावट और अधिक बढ़ गयी। कर्ज संबंधी लिखतों और चलनिधि समायोजन सुविधा जैसे वैकल्पिक माध्यमों से उधार लेकर से बैंकों ने अपनी जमाराशियों में बढ़ोत्तरी की।

II.3.11 स्रोत पक्ष में, व्यापक मुद्रा में कमी का मुख्य कारण वाणिज्यिक ऋण में बढ़ोतरी है। इसके अलावा, रिज़र्व बैंक के विदेशी मुद्रा परिचालनों के कारण भी व्यापक मुद्रा की वृद्धि में कमी आयी। हालांकि, बैंकिंग प्रणाली से सरकार को दिए जाने वाले ऋण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यह बाजार के बड़े उधार कार्यक्रमों में वाणिज्य बैंकों की सहभागिता को दर्शाती है।

संवृद्धि में मंदी के कारण ऋण में गिरावट

II.3.12 रिज़र्व बैंक ने खाद्येतर ऋण के पूर्वानुमान को मई 2001 के 19 प्रतिशत से घटाकर जुलाई 2011 में 18 प्रतिशत करते हुए अंततः जनवरी 2012 में 16 प्रतिशत कर दिया। व्यापक मुद्रा में वृद्धि रिज़र्व बैंक के सांकेतिक पूर्वानुमान से अधिक होने के बावजूद ऋण की वृद्धि में क्रमिक रूप से आयी गिरावट से यह रिज़र्व अपेक्षित सीमा रेखा के नीचे चला गया, इसको देखते हुए खाद्येतर ऋण के पूर्वानुमान में कटौती की गयी (चार्ट II.25)। ऋण में गिरावट धीमी हो रही संवृद्धि और बैंकों द्वारा कम जोखिम उठाने की प्रवृत्ति को दर्शाते है जिसके परिणामस्वरूप सरकारी प्रतिभूतियों

चार्ट II.25: खाद्येतर ऋण में वृद्धि (वर्ष-दर-वर्ष, प्रतिशत)

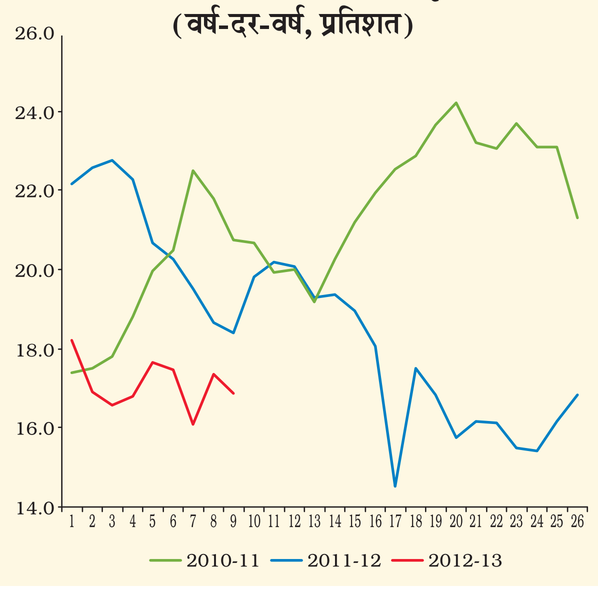

बॉक्स II.10
मौद्रिक प्रभाव-अंतरण के ब्याज दर और ऋण चैनल

मौद्रिक प्रभाव-अंतरण उस कार्यप्रणाली के बारे में बताता है जिसके द्वारा मौद्रिक नीति के बदलाव मुद्रास्फीति और संवृद्धि को प्रभावित करने के अतिंम उद्देश्यों को प्राप्त करती है। भारतीय मामले में ब्याज दर और ऋण चैनल विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। ब्याज दर चैनल यह बताता है कि मुद्रा आपूर्ति में बदलाव ब्याज दरों में परिवर्तन के माध्यम से निवेश, समग्र मांग, मुद्रास्फीति और आऊटपुट पर कैसे असर डालता है। संकुचनकारी मौद्रिक नीति उधार की वास्तविक दर को बढ़ा देती है जिससे पूंजी की लागत में बढ़ोत्तरी हो जाती है। इसके कारण निवेश खर्च, और साथ ही, समग्र मांग में गिरावट आती है और इससे संवृद्धि में कमी आती है और मुद्रास्फीति में गिरावट आती है।

मौद्रिक प्रभाव-अंतरण के ऋण चैनल दो व्यापक चैनलों के माध्यम से कार्य करते हैं- तुलनपत्र चैनल और बैंक द्वारा उधार देने संबंधी चैनल। तुलनपत्र चैनल बाह्य वित्त प्रीमियम अर्थात (ईक्विटी और कर्ज) और आंतरिक (प्रतिधारित उपार्जन) बाह्य स्रोतों से जुटाइ गई निधियों की लागत के बीच के अंतर पर असर डालकर अपना कार्य करती है। जैसा कि ऋण बाजार में त्रुटि और सूचना की विषमता होती है, बाह्य निधीयन प्रीमियम में उस समय वृद्धि की प्रवृत्ति होती है जब केंद्रीय बैंक अल्पावधि ब्याज दर में बढ़ोत्तरी करता है। यह निवल नकदी प्रवाह पर असर डालती है और यह प्रभाव किसी फर्म की निवल मालियत या कवरेज अनुपात जैसे वित्तीय अनुपात पर निर्भर करता है। उधारकर्ता के तुलनपत्र में चक्रीय उतार-चढ़ाव ''वित्तीय उत्प्रेरक'' के माध्यम से कारोबारी चक्र में प्रसार लाता है (बनकि, गर्टलर एंड गिलक्रिस्ट,1996)।

बैंक का उधार देने संबंधी चैनल मौद्रिक नीति के अनुसार कार्य करते हुए बैंक ऋण की आपूर्ति की प्रभावित करता है। जैसे ही बाह्य वित्त प्रीमियम में बढ़ोत्तरी होती है, बैंक की वित्त निधियों के स्रोत में कमी आ जाती है। केंद्रीय बैंक द्वारा आधारभूत मुद्रा में कमी करते ही सूचनागत समस्याओं को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले बैंकों की खुदरा जमाराशियां कम होनी शुरू हो जाती है। चूंकि बैंक अन्य स्रोतों जैसेकि जमा प्रमाणपत्र या पूंजी जुटाकर इसकी पूरी तरह भरपाई नहीं कर सकते, इसलिए वे बैंक ऋण के वितरण में कमी करने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

भारत में इन चैनलों के परिचालन संबंधी उल्लेखनीय नए साक्ष्य हैं। मोहंती ने तिमाही ढांचागत वेक्टर ऑटोरिग्रेशन मॉडल का प्रयोग कर यह दर्शाया है कि हाल के वर्षों में भारत में नीतिगत दरों में बढ़ोत्तरी करने से आऊटपुट की वृद्धि पर दो तिमाही के पश्चात नकारात्मक प्रभाव और तीन तिमाहियों के पश्चात मुद्रास्फीति पर हल्का प्रभाव पड़ता है और इन सबका प्रभाव 8-10 तिमाहियों तक बना रहता है। खुद्रक्पम (2011) ने पाया कि नीति के कारण मुद्रा आपूर्ति में प्रसार और संकुचन के प्रभाव से बैंक अपने ऋण संविभाग में समायोजन करते हैं। चलनिधि समायोजन सुविधा लागू करने के बाद के समय में यदि नीतिगत दरों में 100 आधार अंकों की वृद्धि की जाती है तो यह पाया गया है कि ऋण में सांकेतिक संदर्भों में 2.8 प्रतिशत और वास्तविक संदर्भों में 2.2 प्रतिशत की कमी आयी। भारत में बहु संकेतक दृष्टिकोण के फ्रेमवर्क के अधीन मौद्रिक नीति में नीतिगत निर्णय लेते समय ब्याज दर वातावरण और ऋण बाजार की गतिविधियों को ध्यान में रखा जाता है। जमाराशियों की ऐसे अवरुद्धता से बैंक की निधियों की लागत इतनी तेजी से नहीं बदलती कि उन्हें उधार दर में परिवर्तन करना पड़े।

संदर्भ:

बनकि, बी., मार्क गर्टलर और सिमॉन गिलक्रिस्ट(1996), ''द फाइनेंसियल एक्सिलेटर एंड द फ्लाइट टू क्वालिटी'', रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक्स एंड स्टैस्टिक्स, 78(1):1-15

खुद्रक्पम, जे.के.(2011), ''क्रेडिट चैनल ऑफ मॉनीटरी ट्रांसमिशन इन इंडिया : हाऊ इफेक्टिव एंड लॉग आर द लैग्स'', आरबीआई वर्किंग पेपर नं.20/2011, नवम्बर ।

मोहंती, दीपक(2012), ''एविडेंस ऑफ इंट्रेस्ट रेट चैनल ऑफ मॉनीटरी पॉलिसी ट्रांसमिशन इन इंडियाटट, आरबीआई वर्किंग पेपर नं. 6/2012, मई ।

में अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के निवेश में तेजी आयी। हालांकि, इस तथ्य के पर्याप्त सबूत मौजूद हैं कि भारत में, ब्याज दर चैनल और ऋण चैनल हाल के वर्षों में प्रभावी तरीके से काम कर रहा है (बाक्स II.10)

II.3.13 जमाराशियों की वृद्धि में तेजी के साथ-साथ ऋण में गिरावट के कारण 2011-12 की पहली तीन तिमाहियों में ऋण और जमाराशियों की वृद्धि के बीच का अंतर कम हो गया (चार्ट II.26)। दिसंबर 2011 में यह अंतर नकारात्मक भी हो गया। वर्ष 2011-12 के चौथी तिमाही में जमाराशियों की वृद्धि की तीव्र गिरावट और मार्च 2012 में ऋण वितरण में तेजी के कारण इस अंतर में और अधिक बढ़ोत्तरी हुयी। कम ब्याज दर वाली जमाराशियों में वृद्धि और ऋण वितरण में तेजी की यह प्रवृत्ति 2012-13 की पहली तिमाही में भी बनी रही, इस कारण जमाराशियों और ऋण के बीच का अंतर बना रहा। जमाराशियों

चार्ट II.26: अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की समग्र जमाराशियां और बैंक ऋण

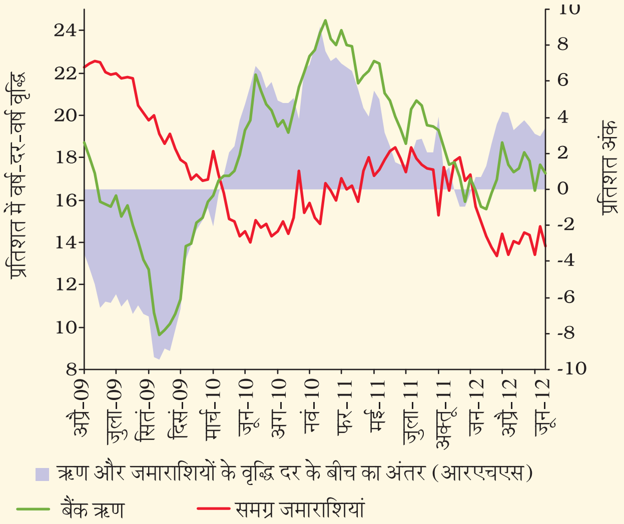

की वृद्धि कमजोर पड़ने पर वाणिज्य बैंकों ने जमाराशियों से इतर स्रोतों - उधार, चलनिधि सुविधा के माध्यम सहित - पर अपनी निर्भरता बढ़ा दी। वर्ष 2011-12 की चौथी तिमाही में आरक्षित नकदी निधि अनुपात में कटौती के कारण बैंक के उधार देने वाले स्रोतों में वृद्धि हुई। बकाया जमा-ऋण अनुपात मार्च 2011 के अंत के 74.5 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2012 के अंत तक 76.7 प्रतिशत हो जाना इस प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। वृद्धिशील जमा-ऋण अनुपात 2011-12 के दौरान 95.5 प्रतिशत (पिछले वर्ष के दौरान 97.5 प्रतिशत) के उच्च स्तर पर बना रहा क्योंकि बैंकों ने ऋण प्रदान करने के लिए चलनिधि समायोजन सुविधा का उपयोग किया। वर्ष 2012-13 की पहली तिमाही में बकाया के साथ-साथ वृद्धिशील जमा ऋण अनुपातों में कमी आयी।

ऋण की वृद्धि पर बढ़ती हुई अनर्जक आस्तियां प्रतिकूल असर डाल रही है

II.3.14 संवृद्धि में कमी आने के परिप्रेक्ष्य में बैंक ऋण प्रदान करने में जोखिम उठाने से बचते रहे। सभी बैंको समूहों के ऋण वितरण में 2011-12 के दौरान गिरावट आयी जो सरकारी क्षेत्र के बैंकों के मामले में 16.3 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के बैंकों के मामले में 19.7 प्रतिशत रही। पिछले वर्ष के दौरान यह आंकड़ा क्रमशः 21.0 प्रतिशत और 24.7 प्रतिशत था। चूंकि वाणिज्य बैंकों द्वारा प्रदान किए गए बकाया ऋण में सरकारी क्षेत्र के बैंकों का हिस्सा 75 प्रतिशत है, वाणिज्य बैंकों की ऋण में वृद्धि की दर पिछले वर्ष के 21.5 प्रतिशत से घटकर 17.0 प्रतिशत हो गयी। बढ़ते हुए अनर्जक ऑस्तियों और कॉर्पोरेट के तुलन पत्र में अधिक लिवरेज के कारण बैंक ऋण प्रदान करने में जोखिम उठाने से बचते रहे।

II.3.15 कृषि के छोड़कर, 2011-12 के दौरान सभी क्षेत्रों को दिए जाने वाले खाद्येतर ऋण में गिरावट आयी। विशेषकर सेवा क्षेत्र और व्यक्तिगत ऋण के मामले में यह गिरावट तीव्र रही और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र और उद्योग के मामले में यह गिरावट कम रही। हालांकि, उद्योग के बीच मझौले उद्योगों के लिए ऋण प्रवाह में तेज गिरावट देखी गई। वर्ष 2012-13 के दौरान, अगस्त 2012 के मध्य में ऋण वृद्धि 16.9 प्रतिशत रही जो रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए संकेतों के अनुसार है।

II.3.16 वर्ष 2012-13 में अब तक, चलनिधि और मौद्रिक स्थितियों में उल्लेखनीय सुधार आया है जो 2011-12 की चौथी तिमाही में आरक्षित नकदी निधि अनुपात में 125 आधार अंकों की कटौती, नीतिगत दरों में 50 आधार अंकों की कटौती और खुले बाजार के परिचालन माध्यम से 800 बिलियन रुपये से अधिक के चलनिधि अंतर्वेशन और बकाया निर्यात ऋण की सीमा को 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत किए जाने से निर्यात ऋण पुनर्वित्त के माध्यम से 100 बिलियन रुपये के चलनिधि अंतर्वेशन के विलम्बित प्रभाव को दर्शाता है। चलनिधि के लगातार अंतर्वेशन से मौद्रिक और समग्र ऋणराशियों में क्रमिक रूप से तेजी आ रही है। अगस्त 2012 से सांविधिक चलनिधि अनुपात में 100 आधार अंकों की कटौती से चलनिधि में और अधिक बढ़ोतरी की संभावना है और जो बैंकों को ऋण और अग्रिम में बढ़ोतरी के लिए प्रेरित करेगा।

IV. वित्तीय बाजार

यूरो क्षेत्र के कर्ज संकट ने बाजार को अस्थिर बनाए रखा

II.4.1 यूरो क्षेत्र में वर्तमान सरकारी कर्ज संकट से होनेवाली अनिश्चितताओं, कई उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के संभावना-स्तर में डाउनग्रेडिंग और अन्य कारकों के साथ-साथ बैंक पुनर्पूंजीकरण की चिंताओं के बीच यूरो क्षेत्र में बैंकों की स्थिरता के मुद्दे, ऐसे कारक थे जिनके कारण 2011-12 के दौरान अधिकांश समय अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजार अस्थिर बना रहा। विभिन्न देशों, विशेषकर यूरो क्षेत्र के बैंकों द्वारा एक-दूसरे के सरकारी कर्ज धारण किए जाने के कारण भी सरकारी कर्ज संकट से बैंकिंग क्षेत्र में दबाव बना रहा। कर्ज के ऊंचे स्तर और क्षीण राजकोषीय गुंजाइश के चलते यूरो क्षेत्र की सरकारों के लिए जनता के पैसे से बैंकों को पुनः पूंजीकृत करने में मुश्किलें आईं। कई उन्नत अर्थव्यवस्थाओं, विशेषकर यूरो क्षेत्र की अर्थव्यवस्थाओं में धीमी या नकारात्मक वृद्धि दर देखे जाने के चलते आर्थिक वृद्धि से जुड़ी चिंताएं सामने आईं। यद्यपि कुछ उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में अधिक चलनिधि उपलब्ध कराने के प्रयोजन से नीतिगत उपाय किए गए, तथापि निजी मांग कमजोर बनी रही जो यह दर्शाता है कि पारिवारिक क्षेत्र द्वारा डीलिवरेजिंग की गई और साथ ही साथ बैंकों द्वारा कम उधार दिए गए।

II.4.2 अगस्त 2011 में दीर्घावधि अमेरिकी सरकारी कर्ज के स्तर को डाउनग्रेड किए जाने के बाद बाजार में अधिक अस्थिरता देखी गई। इक्विटी बाजार में तेज बिकवाली देखी गई और निवेशक निवेश हेतु ऐसी आस्तियों की ओर जाने लगे जिसके बारे में सुरक्षित होने की धारणा थी।फेडरल रिजर्व ने धीमी वृद्धि और अधिक बेराजगारी को देखते हुए अमेरिकी अर्थव्यवस्था की सहायता के लिए 'ऑपरेशन ट्विस्ट' शुरू किया। यूरो क्षेत्र में हुई गतिविधियों के मद्देनजर नीति निर्माताओं के लिए आवश्यक था कि वे वित्तीय बाजार में गिरावट के से बचने के लिए तेजी से कार्रवाई करें। यूरोपियन सेंट्रल बैंक ने

कार्रवाई करते हुए दो दीर्घावधि पुनर्वित्त परिचालन (एलटीआरओ) के जरिए 1 ट्रिलियन से अधिक यूरो डाला। यूरोपीय वित्तीय स्थिरता सुविधा (ईएफएसएफ) ने भी अपने संसाधनों को बढ़ाकर 780 बिलियन यूरो कर लिया। चूक की तुरंत संभावना को देखते हुए अधिक मार्जिन के साथ एक बांड स्वैप शुरू किया गया ताकि ग्रीस अपने दायित्व पूरे कर सके। यूरो क्षेत्र में संकट से निपटने के लिए किए गए कई नीतिगत उपायों का वैश्विक वित्तीय बाजार पर असर हुआ (बॉक्स II.11)।

बॉक्स II.11
यूरो क्षेत्र संकट - नीतिगत कार्रवाई का एक मूल्यांकन

यूरो क्षेत्र में अधिक राजकोषीय घाटा, प्रचुर सार्वजनिक कर्ज तथा बैंकिंग क्षेत्र की समस्याओं के चलते एक गहरा, संरचनागत और बहुआयामी संकट सामने आया और प्रतिस्पर्धा की स्थिति निरंतर खत्म होने से चालू खाता संतुलन की स्थिति धीरे-धीरे खराब होती गई। 2009 में यूरो क्षेत्र के आस-पास से शुरू हुए, सरकारी कर्ज संकट ने हाल ही में फ्रांस और आस्ट्रिया जैसी यूरोपीय क्षेत्र की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं को निगल लिया है जिन्हें 2012 में एएए रेंटिंग स्तर से डाउनग्रेड कर दिया गया था। इस संकट से ग्रीस यूरो क्षेत्र से बाहर होने की कगार पर आ गया है और इसका परिणामी प्रभाव स्पेन तथा पुर्तगाल में बैंकिंग संकट के रूप में हुआ है। चूंकि यूरो देशों में एकल करेंसी है, इसलिए प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं में नीति को लेकर दुविधा बनी रही क्योंकि उनके पास स्थिरीकरण उपायों के रूप में विनिमय दर और मौद्रिक नीति का प्रयोग करने की स्वंतत्रता नहीं थी।

नीतिगत उपाय

संकट को खत्म करने के लिए किए गए नीतिगत उपाय मुख्यतया चार प्रकार के थे : (i) क्षेत्रीय वित्तीय व्यवस्थाएं और संसाधनों के लिए यूरो-अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का संयुक्त प्रावधान, (ii) यूरोपियन सेंट्रल बैंक द्वारा उपलब्ध कराई गई अतिरिक्त चलनिधि सुविधा, (iii) यूरोपीय बैंकिंग प्रणाली को पुनः पूंजीकृत करने तथा विवेकपूर्ण मानदंडों को मजबूत करने के लिए किए गए उपाय और (iv) विकृत राजकोषीय प्रणाली को ठीक करने के लिए संरचनागत उपाय।

इस क्षेत्र में मई 2010 में यूरोपीय वित्तीय स्थिरीकरण प्रक्रिया (ईएफएसएम), अगस्त 2010 में यूरोपीय वित्तीय स्थिरता सुविधा (ईएफएसएफ) और यूरोपीय स्थिरीकरण प्रक्रिया (ईएसएम), जिसका परिचालन किया जा रहा है परंतु इसे अभी तक बैंकिंग लाइसेंस नहीं दिया गया है, जैसी नई संस्थाओं के गठन के जरिए वित्तीय व्यवस्थाएं शुरू की गईं। एक ओर ईएफएसएम के तहत यूरोपीय संघ बजट के अनुमोदन से यूरोपीय आयोग द्वारा जुटायी गयी निधियां शामिल हैं, वहीं दूसरी ओर ईएफएसएफ जैसी संस्थाओं को अधिकार दिया गया कि वे बाजार में यूरो क्षेत्र के 17 सदस्य राष्ट्रों द्वारा गारंटीकृत बांड और अन्य कर्ज लिखत जारी कर निधियां जुटा सकती हैं। इन संस्थाओं ने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ मिलकर ग्रीस, आयरलैंड, पुर्तगाल और इटली के राहत पैकेज में निधि सहायता दी।

यूरोपियन सेंट्रल बैंक ने प्रतिभूति बाजार कार्यक्रम के जरिए सरकारी कर्ज बाजार को स्थिर करने का प्रयास किया और इस कार्यक्रम में प्रभावित देशों की सार्वजनिक और निजी - दोनों ऋणों की स्टेरलाइज्ड खरीद शामिल थी। दिसंबर 2011 में, यूरोपियन सेंट्रल बैंक ने यूरो क्षेत्र के बैंकों के लिए तीन साल तक दो विशेष दीर्घकालिक पुनर्वित्त परिचालन (एलटीआरओ) के जरिए यूरो मूल्यवर्ग निधीयन उपलब्ध कराने का वचन दिया ताकि बैंक अगले कुछ वर्षों में बांड के परिपक्व होने से उत्पन्न निधीयन की संभाव्य आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

यूरोपीय बैंकों द्वारा बड़ी मात्रा में सरकारी कर्ज धारण किए जाने से यह संभावना उत्पन्न हुई कि इस संकट का प्रभाव-विस्तार वित्तीय क्षेत्र में हो सकता है, इसलिए बैंकिंग प्रणाली में विश्वास बढ़ाने के प्रयास किए गए। प्रमुख उपायों में बैंकों को स्ट्रेस टेस्ट के लिए प्रोत्साहित करना तथा उनका पारदर्शी विवरण प्रस्तुत करना और 65 प्रमुख बैंकों को पुनःपूंजीकृत करना शामिल था। इन प्रमुख बैंकों की जोखिम भारित आस्ति की तुलना में उनके कोर टीयर I पूंजी को जून 2012 के अंत तक 9 प्रतिशत तक बढ़ाकर उन्हें फिर से पूंजीकृत किया जाना शामिल था।

मध्यम अवधि के नीतिगत उपायों के आलोक में यूरोपीय नेताओं ने अक्सर दोहराया कि वे राजकोषीय मितव्ययिता उपायों को लागू करने के प्रति वचनबद्ध हैं। दिसंबर 2011 में ब्रुसेल्स शिखर सम्मेलन में यूरोपीय सदस्य सहमत हुए कि सामान्य सरकारी बजट या तो संतुलित होना चाहिए या अधिशेष की स्थिति में होना चाहिए। इसके अलवा, यूरो क्षेत्र से बाहर की संस्थाओं ने कई उपायों के जरिए अपनी सहायता उपलब्ध कराई जैसे 2010 और फिर 2011 में केंद्रीय बैंक द्वारा आकस्मिक स्वैप लाइन प्रावधान उपलब्ध कराना और नरम एवं गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति उपायों की घोषणा करना।

इसके अतिरिक्त, हाल में (जून 2012) विभिन्न ढांचागत उपाय किए जा रहे हैं। इनका उद्देश्य नेटवर्क उद्योगों में प्रतियोगिता बढ़ाने, डिजिटल अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देने, हरित अर्थव्यवस्था की संभावनाओं का दोहन करने, सर्विस प्रोवाइडरों पर लगाए गए अनैतिक नियंत्रणों को समाप्त करने तथा कारोबार शुरू करने हेतु आसान माहौल बनाने सहित 'वृद्धि तथा रोजगार के लिए सहयोग' पर यूरोपीय परिषद का वह निर्णय शामिल है जिसका लक्ष्य वृद्धि की घरेलू संभावना को बढ़ाकर तत्काल निवेश के लिए 120 बिलियन यूरो जुटाना है।

एक विचार यह भी है कि, यद्यपि इस बात की संभावना नहीं है, ग्रीस जैसे संकटग्रस्त देशों के यूरोपीय यूनियन से अलग हो जाने पर प्रभावित देशों को मध्यावधि में अधिक नीतिगत आसानी होगी।

मूल्यांकन

यूरो क्षेत्र में प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं को बेल-आउट करने और चलनिधि मुहैया कराने जैसे किए गए नीतिगत उपाय कर्ज संकट से निपटने में प्रभावी नहीं हो पाए। इन अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय वहनीयता और दिवालिएपन की चिंता अभी भी बनी हुई है। उदाहरण के लिए जून 2012 में स्पेन की आर्थिक स्थिति खराब हुई जिसके चलते उसके बैंकों को बचाव पैकेज के रूप में सहायता देनी पड़ी। ऐसा प्रतीत होता है कि ये उपाय ढांचागत मुद्दों का समाधान करने के बजाय संकट से तत्कालिक तौर पर बचने के उद्देश्य से किए गये थे।

चूंकि एकल करेंसी वाली अर्थव्यवस्थाओं में विनिमय दर को व्यवस्थित करने का विकल्प नहीं होता है, इसलिए राजकोषीय सुदृढ़ीकरण के जरिए ही आवश्यक व्यवस्था हो सकती है। तब भी, वर्तमान राजकोषीय मितव्ययिता उपायों से निकट समय में रिकवरी के प्रभावित होने की संभावना कम ही है। राजकोषीय सुदृढ़ीकरण और अल्प अवधि में होने वाली वृद्धि के बीच स्पष्ट क्षणिक चयन मजबूत सामूहिक प्रयास से ही संभव है ताकि एक राजकोषीय संघ स्थापित हो

(जारी...)

पाए। इसके अलावा, घरेलू बचत को प्रोत्साहित करने और स्वदेशी सरकारी बांड बाजार विकसित करने के प्रयास किए जाने चाहिए ताकि लोक कर्ज के वित्तीयन हेतु विदेशी पूंजी का सहारा कम लेना पड़े।

दूसरा, क्षेत्रीय स्तर पर की गई व्यवस्थाओं में सीमित रोधी-क्षमता होती है, और इसलिए निधि जुटाने में बहुस्तरीय वित्तीय सहायता की जरूरत हो सकती है। लेकिन इसका सीधा असर अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निधि जुटाने के प्रयास पर होगा। चूंकि 2010 के कोटा सुधार की पुष्टि एक लंबी प्रक्रिया है, इसलिए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष को उधारीकृत निधियों का सहारा लेना पड़ सकता है जिससे कोटा और उधारीकृत निधियों के बीच के अनुपात का संतुलन बिगड़ सकता है और इससे गवर्नेंस पर भी बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। निम्न आय वाले देशों से जुटायी गयी निधियों से न केवल वैश्विक आर्थिक अनिश्चितता को अधिक खतरा हो सकता है बल्कि संकट को दूर से देख रहे ऐसे देशों पर भी दबाव पड़ सकता है जो अनिश्चित समष्टि-आर्थिक स्थिति का सामना कर रहे हैं।

तीसरा, इस क्षेत्र में चलनिधि के बढ़े हुए प्रावधान से वैश्विक स्तर पर चलनिधि बढ़ सकती है जिसके परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर मुद्रास्फीति बढ़ सकती है और उभरती विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति संबंधी चुनौतियां बढ़ जाएंगी। यदि वैश्विक स्तर पर बढ़ी हुई चलनिधि पण्य बाजार में आ जाती है तब वस्तुओं, विशेषकर तेल के दाम बढ़ जाएंगे और परिणामस्वरूप तेल आयात करने वाली भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं में चालू खाता घाटा बढ़ जाएगा। यूरोपीय बैंकिंग प्रणाली में विवेकपूर्ण मानदंड कड़े करने से डीलिवरेजिंग हो सकती है जिससे उभरती विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में विनिमय दर अस्थिरता के बढ़ जाने का खतरा है।

इस पृष्ठभूमि में, यह चर्चा बनी हुई है कि क्या यूरो क्षेत्र में संकट से निपटने हेतु किए गए उपाय पर्याप्त रहे हैं। एक तर्क यह है कि इस संकट से निपटने में ईयू, ईसीबी तथा आईएमएफ के ''ट्रायोका'' में विलंब हुआ। ब्रुकिंग इंस्टीट्यूशन के फेलो डगलस जे. इलियट ने अपने कथन में तर्क दिया कि यूरो संकट यूरोप को एक गहरी मंदी में डाल सकता है और अमेरिका में कम-से-कम थोड़ी मंदी तो छा ही जाएगी। ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने तर्क दिया कि यूरो क्षेत्र में मितव्ययिता का अर्थगणित असफल हो सकता है। कुछ दूसरे लोग यह तर्क देते हैं कि एकल मुद्रा मूल रूप से व्यवहार्य नहीं होती है और करदाताओं के पैसे अव्यवहार्य बेल आउट में चले जाते हैं। अब समस्या यह है कि क्या ऐसे क्षेत्र में दूसरी अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षित रखा जा सकता है और तेजी से फैले इस संक्रमण को किस प्रकार रोका जाए। ब्रायन (2012) चेतावनी देते हैं कि यदि नुकसान को आपस में बांट लेने पर सहमति नहीं होती है, तब इस अस्त-व्यस्त चूक की परिणति संगठन से जबरन बाहर निकलने के रूप में हो सकती है जिसका विश्व के अन्य देशों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है।

ब्रुती और सॉर (2011) ने पाया कि ग्रीक सरकारी कर्ज में निवेश और ग्रीक बैंकों द्वारा लिए गए कर्ज से यूरो क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण संप्रेषण चैनल निर्मित होता है और कुल मिलाकर, यूरो-संकट के संप्रेषण में सरकारी कर्ज के जरिए होने वाली वित्तीय अंतरसंबद्धता का हिस्सा दो तिहाई था। इसके अतिरिक्त, यदि ग्रीस यूनियन से अलग हो जाता है तो अन्य देशों के यूरो क्षेत्र से अलग हो जाने की संभावना काफी बढ़ जाती है क्योंकि उनकी स्थिति भी उतनी ही खराब है। ग्रीस चाहे डिफाल्ट करे या न करे पुर्तगाल तथा आयरलैंड को अपने सरकारी ऋण का पुनर्गठन करना पड़ सकता है। सरकारी ऋण की दृष्टि से खराब होने पर भी कुछ बेहतर स्थिति वाले इटली तथा स्पेन जैसे देशों को अंतिम ऋणदाता के रूप में समर्थन देकर बचाने की जरूरत है ताकि वे डिफाल्ट करने से बच सकें। इसका जर्मन तथा फ्रांस के बैंकों के तुलन-पत्रों पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा क्योंकि उनके पास ग्रीस के ऋण पत्रों का अधिकांश हिस्सा है। सुब्बाराव (2012) ने यूरोपियन सेंट्रल बैंक सहित अन्य केंद्रीय बैंकों द्वारा एक ही साथ मूल्य स्थिरता, वित्तीय स्थिरता और सरकारी कर्ज वहनीयता के बीच सामंजस्य बिठाने में तीन स्तर पर होने वाली दुविधा की ओर संकेत दिया। तीन स्तर पर होने वाली यह नई दुविधा वैश्विक संकट के बाद उत्पन्न हुई है।

संदर्भ

ब्रायन ओ पेडर, (2012)''द यूरो क्राइसिस: ऑर्डर्ली डिफॉल्ट ऑर यूरो एक्जिट'', द इन्स्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल एंड यूरोपियन अफेयर्स, रिपोर्ट नं.8।

ब्रुती, फिलिपो और फिलिप सौर (2011), 'ट्रांसमिशन ऑफ सॉवरेन रिस्क इन ए यूरो क्राइसिस,' दिसंबर, स्विस नेशनल बैंक स्टडी सेंटर, गेरजेंशी वर्किंग पेपर नं.12.01।

दुव्वरी सुब्बाराव (आगामी), 'मूल्य स्थिरता, वित्तीय स्थिरता और सरकारी कर्ज वहनीयता के नए ट्राइलेमा से उत्पन्न नीतिगत चुनौतियां', उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में समष्टि अर्थशास्त्र और वित्त।

अमेरिकी कांग्रेस (2011), 'वाट द यूरो क्राइसिस मीन्स फॉर टैक्सपेयर्स एंड यूएस इकॉनॉमी', संकटग्रस्त आस्ति पुनर्गठन कार्यक्रम (टीएआरपी), वित्तीय सेवाएं और सार्वजनिक एवं निजी बेलआउट प्रोग्राम पर सदन की उप समिति के समक्ष डगलस इलियट का परिसाक्ष्य, 15 दिसंबर 2011।

II.4.3 2012 के शुरू में, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं द्वारा दीर्घावधि पुनर्वित्त परिचालन और अन्य नीतिगत कार्रवाईयां किए जाने के चलते जो चलनिधि जुटी, उसके कारण वैश्विक वित्तीय बाजार, विशेषकर इक्विटी बाजार में तेजी का रु ख देखा गया। तथापि, इस आशंका के बाद यूरो क्षेत्र सरकारी कर्ज संकट की चिंताएं पुनः प्रकट हुईं कि ग्रीस और फ्रांस के नेतृत्व में परिवर्तन से मितव्ययिता-आधारित बेलआउट प्लान पर पुनर्विचार हो सकता है जिससे कारण वित्तीय बाजार पर दबाव पड़ सकता है। (चार्ट II.27)। जून-अगस्त 2012 के दौरान, बैंकों और सरकारों के बीच दुष्चक्र को खत्म करने के प्रयोजन से यूरोपीय परिषद द्वारा किए गए कई उपायों के बावजूद स्पेन के बांड प्रतिफल ऊंचे स्तर पर बने रहे। इसके अलावा, हाल की गतिविधियों जैसे लिबॉर में हेर-फेर के किए गए प्रयासों से उजागर हुई बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र की कमजोरियों ने और भी अनिश्चितता बढ़ाई। यूके सरकार की फाइनेंशियल कंडक्ट अथॉरिटी के अगस्त 2012 के डिस्कशन पेपर 'व्हेटली रिव्यु ऑफ लिबॉर' में अन्य बातों के साथ-साथ लिबॉर के सख्त प्रबंधन हेतु आवश्यक सुधारों का उल्लेख किया है और संबंधित पार्टियों से फीडबैक का अनुरोध भी किया है।

II.4.4 भारतीय वित्तीय बाजार (विशेषकर इक्विटी और करेंसी बाजार) पर घरेलू वृद्धि तथा मुद्रास्फीति से जुड़ी चिंताओं और

चार्ट II.27 : वैश्विक वित्तीय बाज़ारों की गतिविधियों के संकेतक

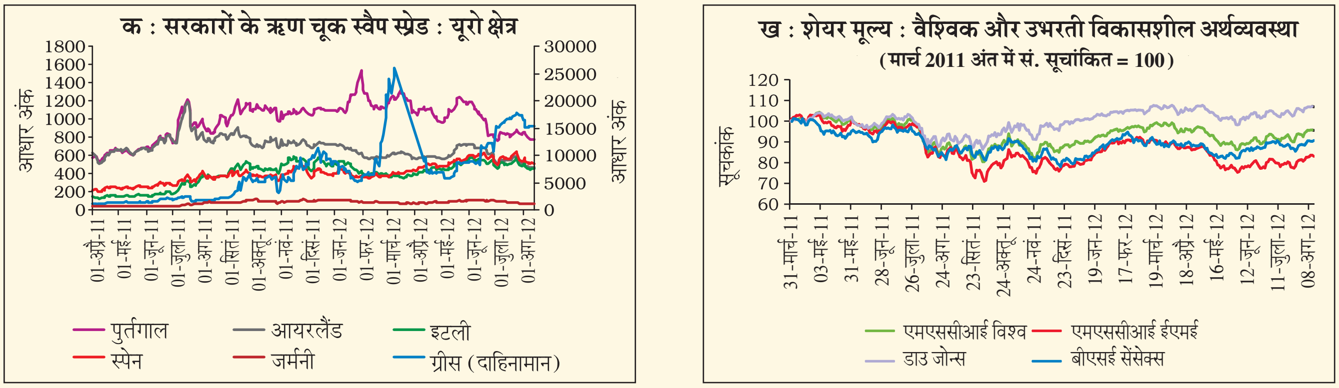

मुद्रास्फीति-रोधी मौद्रिक नीति तथा अभिशासन संबंधी मुद्दों के अलावा वैश्विक उथल-पुथल का काफी अधिक प्रभाव देखा गया। वैश्विक और घरेलू अर्थव्यवस्था से उत्पन्न आघात शीघ्र ही वित्तीय बाजार में दिखाई देने लगे। आंतरिक रूप से (इन-हाउस) तैयार किया गया एक वित्तीय स्थिति सूचकांक वित्तीय चरों (वैरिएबल्स) से जुड़ी जानकारी बताता है (बॉक्स II.12)।

बॉक्स II.12
वित्तीय स्थिति सूचकांक

वास्तविक अर्थव्यवस्था के बारे में वित्तीय चरों से मिलने वाले संकेतों पर काफी साहित्य मौजूद है। अर्थशास्त्रियों और विश्लेषकों ने अक्सर अर्थव्यवस्था की भावी दिशा के लिए अलग-अलग वित्तीय कीमतों को अग्रणी संकेतक के रूप में प्रयोग किया है। अर्थव्यवस्था की दिशा तय करने में ब्याज-दर और ब्याज-दर स्प्रेड का प्रयोग उपयोगी माना जाता है (बर्नान्के, 1990)। प्रतिफल वक्र का आकार, अर्थात् ब्याज-दरों की मीयादी संरचना से भविष्य में अर्थव्यवस्था की स्थिति के बारे में बाजार प्रतिभागियों की संभावनाओं की जानकारी मिलती है। प्रतिफल वक्र में एक वर्ष से अधिक समय के लिए मुद्रास्फीति की भावी गति की स्थिति के बारे में काफी जानकारी प्राप्त होती है।

इसी प्रकार, तीन महीने के वाणिज्यिक पत्र (सीपी) और तीन महीने के खजाना बिलों (टी-बिल) के बीच का स्प्रेड कार्पोरेट से जुड़े ऋण चूक जोखिम को दर्शाता है (यदि चलनिधि स्प्रेड को नजरअंदाज कर दिया जाए)। स्टॉक और वैटसन (1989) ने पाया कि वाणिज्यिक पत्र और खजाना बिलों, 10 वर्षीय और 1 वर्षीय सरकारी बांडों के बीच स्प्रेड, आवास निर्माण, टिकाऊ वस्तु उद्योग में विनिर्माताओं के अपूर्ण आर्डर और अंशकालिक काम में वृद्धि, व्यापार चक्र के अच्छे भावी संकेतक हैं।

अलग-अलग वित्तीय आस्तियों में हुई गतिविधियों का अलग-अलग अध्ययन हालांकि बहुत उपयोगी नहीं है क्योंकि हर एक मान से अर्थव्यवस्था के केवल एक ही पहलू की जानकारी मिल पाती है और अन्य पहलुओं के बारे में अपेक्षित जानकारी उजागर नहीं हो पाती है। महत्त्वपूर्ण वित्तीय चरों का एक सूचकांक बनाकर इस समस्या का हल निकाला जा सकता है। इस प्रकार के सूचकांक को सामान्यतया वित्तीय स्थिति सूचकांक (एफसीआई) कहते हैं और यह चालू वित्तीय चरों की मदद से अर्थव्यवस्था की भावी स्थिति की जानकारी का सारांश प्रस्तुत करता है (हैटजियस और अन्य, 2010)। वास्तव में, वित्तीय स्थिति सूचकांक वित्तीय बाजार के विभिन्न, कभी-कभी विरोधाभासी संकेतों के संश्लेषण का विश्लेषण करता है।

बैंक ऑफ कनाडा की मॉनेटरी कंडीशंस इंडेक्स, मैक्रोइकॉनॉमिक एडवाइजर मॉनेटरी एंड फाइनेंशियल कंडीशंस इंडेक्स (एमएफसीआई), ब्लूमबर्ग फाइनेंशियल कंडीशंस इंडेक्स (बीबीएफसीआई), गोल्डमैन सैक्स फाइनेंशियल कंडीशंस इंडेक्स (जीएसएफसीआई), फेडरल रिज़र्व ऑफ कनास सिटी फाइनेंशियल स्ट्रेस इंडेक्स (केसीएफसीआई), आर्थिक सहयोग और विकास संगठन एफसीआई और भारत में मौद्रिक स्थिति सूचकांक (कन्नन और अन्य 2006) जैसे सूचकांक अलग-अलग समय पर निर्मित हुए। साहित्य से जानकारी लेते हुए, भारत में वित्तीय स्थिति सूचकांक जनवरी 2004 और मार्च 2012 की मध्य अवधि के मासिक डेटा को लेकर एक *प्रधान घटक विश्लेषण* के जरिए निर्मित किया गया है। वैसे तो ये सूचकांक मुद्रा बाजार, बांड बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और शेयर बाजार के लिए तैयार किए गए हैं लेकिन साथ ही एक समग्र वित्तीय स्थिति सूचकांक भी तैयार किया गया है जिसमें सभी क्षेत्र शामिल हैं (सारणी 1)।

सारणी 1 : वित्तीय स्थिति सूचकांक के घटक

मांग स्प्रेड (मांग दर - प्रभावी नीति दर) सीबीएलओ स्प्रेड (प्रभावी नीति दर - सीबीएलओ दर) बाजार रिपो स्प्रेड (प्रभावी नीति दर - बाजार रिपो दर) अल्पावधि स्प्रेड (तीन महीने के वाणिज्यिक पत्र - 3 महीने के खजाना बिल)	मुद्रा बाजार वित्तीय स्थिति सूचकांक	कुल वित्तीय स्थिति सूचकांक
10 वर्षीय सरकारी प्रतिभूति प्रतिफल दीर्घावधि स्प्रेड (10 वर्षीय एएए कंपनी बांड - 10 वर्षीय सरकारी प्रतिभूति मध्यावधि स्प्रेड (5 वर्षीय एएए कंपनी बांड - 5 वर्षीय सरकारी प्रतिभूति	बांड बाजार वित्तीय स्थिति सूचकांक	
विनिमय दर 3 महीने की अंतर्निहित अस्थिरता विदेशी मुद्रा सीमैक्स	विदेशी मुद्रा बाजार वित्तीय स्थिति सूचकांक	
एस एंड पी सीएनएक्स निफ्टी मासिक विवरणी एस एंड पी सीएनएक्स निफ्टी का पीई अनुपात एस एंड पी सीएनएक्स निफ्टी मौद्रिक पूंजीकरण - जीडीपी अनुपात	शेयर बाजार वित्तीय स्थिति सूचकांक	

(जारी...)

चार्ट 1 : भारत के वित्तीय स्थिति सूचकांक में उतार चढ़ाव

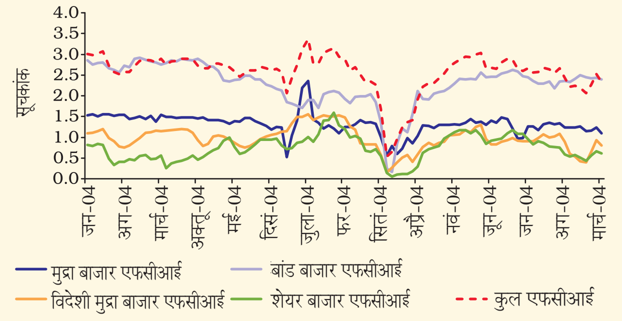

यह सूचकांक इस प्रकार तैयार किया गया है कि उच्च मान निभावपरक वित्तीय स्थिति दर्शाता है, जबकि निम्न मान कठोर वित्तीय स्थिति दर्शाता है। चार्ट 1 में यह देखा जा सकता है कि वैश्विक वित्तीय संकट के मद्देनजर वित्तीय स्थिति सूचकांक दबावग्रस्त वित्तीय स्थिति प्रतिबिंबित करता है।

स्पष्टतः यह सूचकांक अक्तूबर 2008 में लेहमन ब्रदर्स के ढहने के बाद दबावग्रस्त वित्तीय स्थिति प्रतिबिंबित करता है। सकल देशी उत्पाद, औद्योगिक उत्पादन सूचकांक और मुद्रास्फीति जैसे आर्थिक चरों का पूर्वानुमान करने या इनकी व्याख्या करने के संदर्भ में वित्तीय स्थिति सूचकांक की उपयोगिता सराहनीय है। जीडीपी वृद्धि दर तथा औद्योगिक उत्पादन सूचकांक वृद्धि दर और वित्तीय स्थिति सूचकांक के बीच अंतरसंबद्धता क्रमशः 0.43 और 0.60 है जो सांख्यिकी की दृष्टि से काफी अधिक है। वित्तीय स्थिति में रिकवरी काफी हद तक औद्योगिक उत्पादन सूचकांक और जीडीपी वृद्धि दरों के अनुरूप रही है (चार्ट 2)। तब भी, कुल वित्तीय स्थिति सूचकांक और आर्थिक चरों के बीच लिंक स्थापित करने हेतु और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

संदर्भ :

बेन एस बर्नान्के (1990), ''ऑन द प्रिडिक्टिव पावर ऑफ इन्टरेस्ट रेट्स एंड इंटरेस्ट रेट स्प्रेड''। *न्यू इंग्लैंड इकॉनॉमिक रिव्यू*, नवंबर/दिसंबर, पृष्ठ : 51-68।

जे. हैटजियस, पी. हूपर, एफ. मिशकिन, के.शियॉनहॉल्टज और एम.वैटसन (2010), ''फाइनेंशियल कंडीशंस इन्डेक्सः ए फ्रेश लुक आफ्टर द फाइनेंशियल क्राइसिस'', *नेशनल ब्यूरो ऑफ इकॉनॉमिक* रिसर्च वर्किंग पेपर नं.16150, कैंब्रिज, जुलाई।

आर.कन्नन, सिद्धार्थ सान्याल और विनोद बिहारी भोई (2006), ''मॉनेटरी कन्डीशंस इंडेक्स फॉर इंडिया'', भारतीय रिज़र्व बैंक के ऑकेजनल पेपर्स, भाग 27, नं.3, विन्टर।

जे. स्टॉक और एम.वैटसन (1989), ''न्यू इंडेक्सेस ऑफ क्वायन्सिडेंट एंड लीडिंग इकॉनॉमिक इंडीकेटर्स'', ओ बालचंद्र और एस फिशर (संपादक), *एनबीईआर मैक्रोइकॉनॉमिक्स एन्युअल* (कैंब्रिज,एमएः एमआईटी), 352-94।

चार्ट 2 : वित्तीय स्थिति सूचकांक, सकल देशी उत्पाद और औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में रुझान

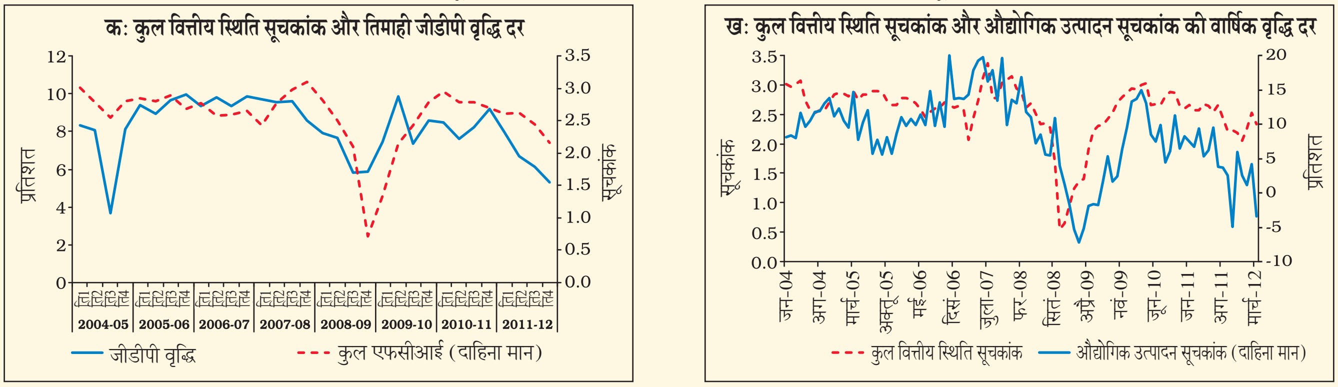

वर्ष के अधिकांश समय चलनिधि की तंग स्थिति में मौद्रिक संचरण तेजी से हुआ

II.4.5 रिज़र्व बैंक के मौद्रिक नीति रुझान में धीरे-धीरे परिवर्तन देखा गया और इसका मुख्य फोकस मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने तथा मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को रोकने (मई-अक्तूबर 2011 के दौरान) से हटकर मुद्रास्फीतिकारी दबाव को उचित महत्त्व देते हुए क्रमश: विकास हेतु सहायक रुख़ की ओर जाने लगा। नीतिगत रुख़ के अनुरूप 2011-12 में चलनिधि की स्थिति में कमी बनी रही, जबकि वर्ष के परवर्ती भाग में नवंबर 2011 की शुरुआत से चलनिधि की स्थिति में कमी बैंकों की निवल मांग और सावधि देयताओं (एनडीटीएल) के एक प्रतिशत +/- के घोषित स्वीकार्य स्तर से अधिक देखी गई (चार्ट II.28क)।

मुद्रा बाजार दरें बढ़ीं जो मौद्रिक नीति के असर और चलनिधि में संरचनागत कमी को प्रतिबिंबित करता है

II.4.6 2011-12 की पहली छमाही में मांग मुद्रा दर सामान्यतया रिपो दर के आस-पास रही, जबकि चलनिधि में कमी की स्थिति लगभग रिज़र्व बैंक की सहनशील सीमा के अंदर बनी हुई थी। तथापि, दूसरी छमाही में चलनिधि की तंग स्थिति के कारण मांग दर अधिकांशतः रिपो दर के ऊपर ही बनी रही (यद्यपि यह सीमांत स्थायी सुविधा दर के नीचे थी)। इस रुझान से अलग हटते हुए, वर्ष

चार्ट II.28: वित्तीय बाजार में नीति दरों का संप्रेषण

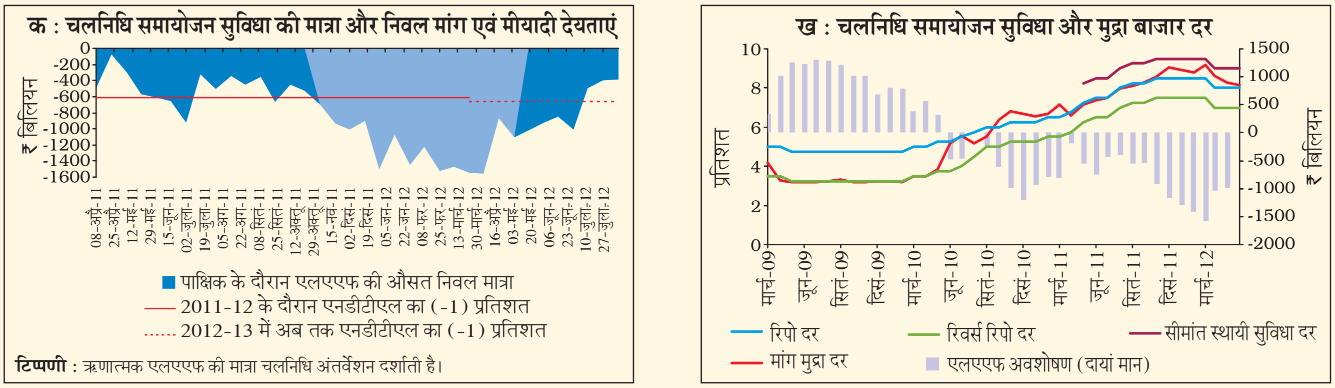

के अंत में बैंकों द्वारा अपने तुलन-पत्र (और रिज़र्व की फ्रंटलोडिंग) को मजबूत करने के लिए निधि जुटाने की आपाधापी के कारण 30 मार्च 2012 को मांग मुद्रा दर तेजी से सीमांत स्थायी सुविधा दर से अधिक हो गई। मुद्रा बाजार के संपार्श्विक क्षेत्र में दरें मांग दर के साथ-साथ बनी रही, लेकिन वर्ष के दौरान सामान्यतया इससे नीचे रहीं (चार्ट II.28 ख)। मौद्रिक नीति वक्तव्य 2012-13 के तहत की गई घोषणा (17 अप्रैल 2012) में नीतिगत दर में कमी और चलनिधि की स्थिति आरामदायक रहने के कारण वर्ष 2012-13 में अब तक मुद्रा बाजार दरों में गिरावट हुई है।

II.4.7 वित्तीय बाजार में मौद्रिक नीति उपायों के प्रभावों के संचरण की गति तय करती है कि नीति कार्रवाइयां कितनी प्रभावी हैं। जैसा कि मौद्रिक नीति की परिचालन प्रक्रिया के बारे में गठित कार्यदल (अध्यक्षः श्री दीपक मोहंती) द्वारा उल्लेख किया गया कि समूचे वित्तीय बाजार में मौद्रिक नीति के संचरण की गति अन्य स्थितियों की तुलना में अल्प चलनिधि स्थिति में अधिक तेज थी। वित्तीय बाजार और मौद्रिक नीति के संचरण के बीच अंतरसंबद्धता पर किए गए आंतरिक प्रायोगिक विश्लेषण से भी इस निष्कर्ष की पुनः पुष्टि होती है। वर्ष 2005-11 के दौरान भारत के वित्तीय बाजार में मौद्रिक नीति के संचरण में एकरूपता नहीं देखी गयी और यहां मौद्रिक नीति का संचरण तब अधिक तेज और निरंतर होता है जब अन्य स्थिति के मुकाबले मौद्रिक प्रणाली अल्प चलनिधि स्थिति में होती है।

बैंक जमा में बढ़ोत्तरी और ऊंची उधार दर भी मौद्रिक नीति का बेहतर संचरण दर्शाती है

II.4.8 2011-12 के दौरान, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों ने अपने मोडल जमा दर में 82 आधार अंक और मोडल आधार दर में 125 आधार अंक की वृद्धि की। सरकारी क्षेत्र के पांच बड़े बैंकों की भी औसत भारित उधार दरें मार्च 2011 के 10.98 प्रतिशत से बढ़कर सितंबर 2011 में 12.80 प्रतिशत हो गईं और अप्रैल 2012 में इसी स्तर के आस-पास बनी रहीं, तथापि जून 2012 में यह गिरकर 12.58 प्रतिशत हो गई। यह इस बात का संकेत है कि बैंक उधार दरें मौटे तौर पर नीतिगत दर संकेतों के अनुरू प बनी रहीं।

संपार्श्विक मुद्रा बाजार में गिरावट आयी

II.4.9 2011-12 में संपार्श्विक उधार और ऋणदायी बाध्यता (सीबीएलओ) और बाजार रिपो क्षेत्र में लेन-देन की मात्रा में पिछले वर्ष तक तुलना में गिरावट आयी (चार्ट II.29)। संपार्श्विक क्षेत्र में बैंक और प्राथमिक व्यापारी बड़े उधारकर्ता थे , जबकि इस क्षेत्र में म्यूच्युअल फंड और बैंक प्रमुख उधारदाता थे।

II.4.10 वर्ष 2011-12 के दौरान जमा प्रमाणपत्र और वाणिज्यिक पत्र के औसत पाक्षिक निर्गमन में वृद्धि हुई। पट्टादायी एवं वित्त तथा विनिर्माण कंपनियां वाणिज्यिक पत्रों की प्रमुख निर्गमकर्ता थीं। जारी किए गए कुल जमा प्रमाणपत्रों पर प्रभावी ब्याज-दर मार्च 2011 अंत के 9.96 प्रतिशत की तुलना में मार्च 2012 अंत में बढ़कर 11.13 प्रतिशत हो गई। मार्च 2012 के दौरान जमा प्रमाणपत्र दरें तेजी से बढ़ीं और यह प्रतिबिंबित करता है कि चलनिधि की स्थिति तंग बनी हुई थी और आस्ति प्रबंधन कंपनियों को मार्क-टू-मार्केट आधार पर सही मूल्य-निर्धारण करने के प्रति जवाबदेह बनाए जाने के बाद म्यूच्युअल फंड बैंक जमाप्रमाणपत्रों को रोलओवर करने से कतराते रहे। वाणिज्यिक पत्र पर भारित औसत बट्टा दर (डब्लयूएडीआर) मार्च 2011 के अंत के 10.4 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2012 के अंत में 12.2 प्रतिशत हो गया। एक ओर, 2012-13 में अब तक (मध्य जुलाई 2012 तक) वाणिज्यिक पत्र के औसत पाक्षिक निर्गमन में वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर जमा प्रमाणपत्रों के

चार्ट II.29: घरेलू मुद्रा बाजार और सरकारी प्रतिभूति बाजार में गतिविधियां

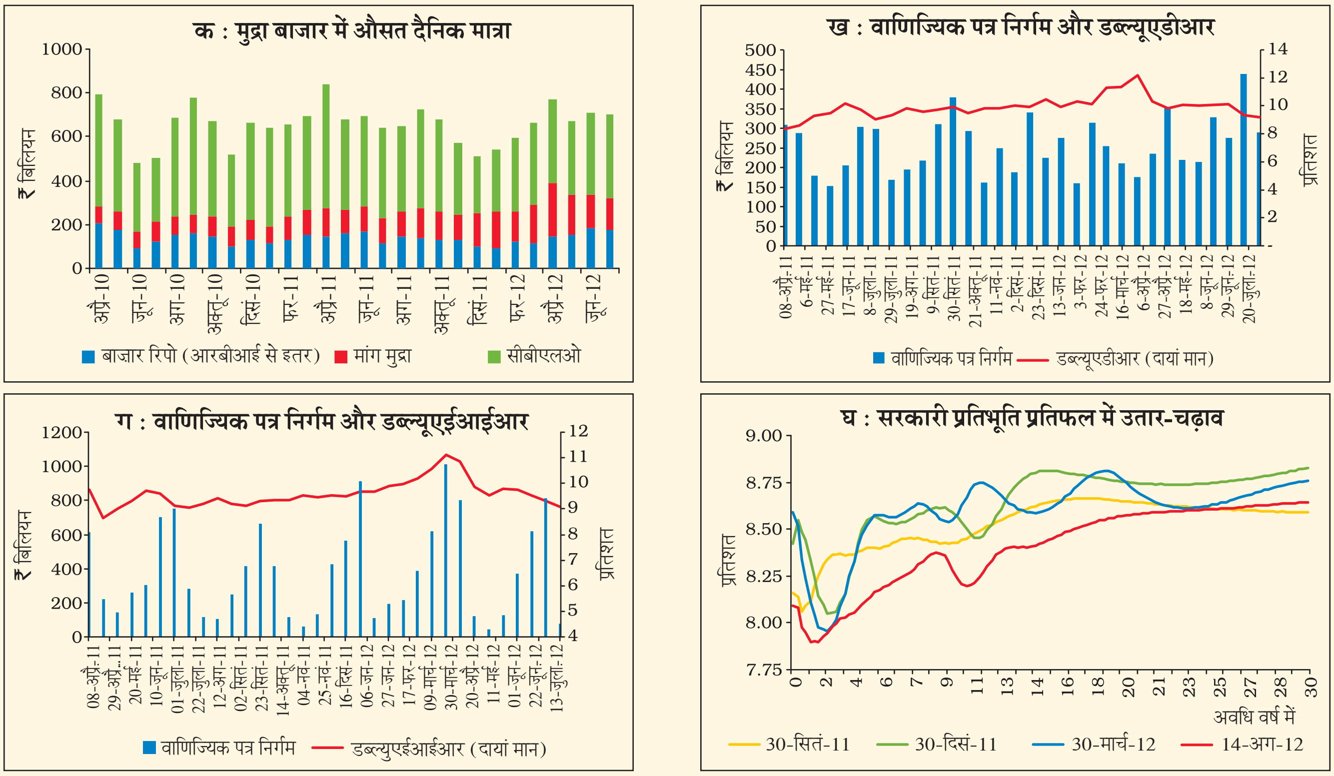

औसत पाक्षिक निर्गमन में गिरावट आयी। मध्य जुलाई 2012 में कुल जमा प्रमाणपत्रों के डबल्यूएईआईआर और कुल वाणिज्यिक पत्रों के डब्लयूएडीआर गिरकर क्रमशः 9.1 प्रतिशत और 9.3 प्रतिशत हो गए।

सरकार द्वारा अधिक बाजार उधारियों के बावजूद सरकारी प्रतिभूतियों पर प्रतिफल दायरे में रहा

II.4.11 2011-12 की पहली छमाही की शुरुआती अवधि में कच्चे तेल सहित वस्तुओं की कीमतों में बढ़ोत्तरी, मुद्रास्फीति से जुड़ी चिंताओं और सरकार के राजकोषीय घाटे के कारण सरकारी प्रतिभूतियों पर प्रतिफल सामान्यतया अधिक बने रहे। प्रतिफल में हुई वृद्धि से प्रतिबिंबित हुआ कि मई 2011 में नीतिगत दरों में 50 आधार अंक की वृद्धि संचसरित हुई। पहली छमाही के परवर्ती भाग में चलनिधि की तंग स्थिति, मुद्रास्फीति की लगातार बनी हुई चिंता, नीतिगत दरों में तीन चरणों में कुल 100 आधार अंक की वृद्धि और आईआईपी के कमजोर आंकड़ों तथा एसएंडपी द्वारा अमेरिका की क्रेडिट रेटिंग डाउनग्रेड किए जाने के बाद सुरक्षित आस्तियों की ओर उन्मुख होने के चलते वृद्धि से जुड़ी चिंताओं के मद्देनजर सरकारी प्रतिभूतियों पर प्रतिफल दायरे में रहे (चार्ट II.29घ)।

II.4.12 रिज़र्व बैंक द्वारा नीतिगत दरों में 25 आधार अंक की वृद्धि किए जाने के बाद 2011-12 की दूसरी छमाही की शुरुआती अवधि में प्रतिफल में वृद्धि जारी रही। तथापि, सरकारी प्रतिभूतियों में विदेशी संस्थागत निवेशकों की निवेश सीमा में वृद्धि, खाद्य मुद्रास्फीति में नरमी और मध्य-तिमाही मौद्रिक नीति समीक्षा (दिसंबर 2011) में दरों में वृद्धि की प्रक्रिया रोके जाने के कारण नवंबर 2011 के मध्य से प्रतिफल में कमी हुई। रिज़र्व बैंक द्वारा खुले बाजार परिचालन के जरिए की गई खरीद से भी सरकारी प्रतिभूतियों पर प्रतिफल में कमी हुई (बॉक्स II.13)। तथापि, चलनिधि की वर्तमान तंग स्थिति और केंद्रीय बजट में की गई घोषणा के अनुसार 2012-13 में सरकार के बढ़े हुए उधार कार्यक्रम की चिंताओं के कारण 2011-12 की चौथी तिमाही के अंत में प्रतिफल में वृद्धि हुई।

II.4.13 अप्रैल 2012 के दौरान नीतिगत दरों में कटौती, मुद्रास्फीति में नरमी और मंद औद्योगिक गतिविधियों एवं निर्यात के कारण सरकारी प्रतिभूतियों के प्रतिफल में कमी हुई। तथापि, अप्रैल 2012 अंत में एसएंडपी द्वारा भारत की दीर्घावधि रेटिंग संभावना डाउनग्रेड कर निगेटिव किए जाने के बाद प्रतिफल में तेज वृद्धि हुई।

बॉक्स II.13
सरकारी प्रतिभूति बाजार की ट्रेडिंग गतिविधियों पर खुले बाजार परिचालन का प्रभाव

2011-12 के उत्तरार्ध में कई कारकों (अस्थायी एवं संरचनागत दोनों) के कारण निवल चलनिधि की स्थिति में तंगी बनी रही। 2011-12 की तीसरी तिमाही से प्रणाली में चलनिधि की तंग स्थिति बनी हुई थी और इससे निपटने के लिए उपाय के रूप में रिज़र्व बैंक ने नीलामी और तयशुदा लेन-देन प्रणाली-आर्डर मैचिंग मार्ग के जरिए खुले बाजार परिचालन किए । नवंबर 2011 में खुले बाजार परिचालन शुरू होने से लेकर 2011-12 के दौरान रिज़र्व बैंक ने प्रणाली में 1.35 ट्रिलियन रुपए की निवल दीर्घावधिक चलनिधि अंतर्वेशित की है (चार्ट 1)। खुले बाजार परिचालन और आरक्षित नकदी निधि अनुपात में कटौती से काफी हद तक चलनिधि की स्थिति में सुधार हुआ।

खुले बाजार परिचालन के जरिए खरीद का उद्देश्य चलनिधि प्रबंधन है। तथापि, रिज़र्व बैंक के खुले बाजार परिचालन के जरिए की गई खरीद से सरकारी प्रतिभूतियों की वर्तमान मांग तेज होती है, प्रतिफल नीचे आ जाता है और ट्रेडिंग की मात्रा बढ़ जाती है, तदनुसार सरकारी प्रतिभूति बाजार में चलनिधि बढ़ जाती है (चार्ट 2)। यदि प्रतिफल पर कोई प्रभाव पड़ता है तो यह सरकारी प्रतिभूति बाजार में मांग-आपूर्ति गणित के कारण होता है और इसे मौद्रिक नीति के किसी संकेत के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए।

चूंकि खुला बाजार परिचालन नीलामी का उद्देश्य टिकाऊ प्रकृति की चलनिधि अंतर्वेशित करना होता है, इसलिए रिज़र्व बैंक को अर्ध-नकदी/गैर-नकदी प्रतिभूतियों के बेहतर मिश्रण की पहचान करनी होती है। अर्ध-नकदी/गैर-नकदी प्रतिभूतियों को शामिल करने का तर्क यह है कि द्वितीयक बाजार में उनकी खरीद/बिक्री बढ़ाई जा सके, नकदी चलनिधि का चुनाव खुले बाजार परिचालन को सफल बनाने के प्रयोजन से किया जाता है। नकदी प्रतिभूतियां अक्सर वे प्रतिभूतियां होती हैं जिनमें मूल्य जोखिम सबसे कम होता है और इस प्रकार नीलामी में इनके सफल होने की संभावना सबसे अधिक होती है, तथापि इस व्यवस्था का डाउनसाइड यह है कि इससे ट्रेड होने योग्य नकदी प्रतिभूतियों की मात्रा कम हो सकती है और यदि आपूर्ति की स्थिति खुले बाजार परिचालन के जरिए हुई खरीद के आनुपातिक नहीं रहती है तो इससे द्वितीयक बाजार की चलनिधि पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

चार्ट 1 : खुले बाजार परिचालन के जरिए नीलामी और अल्प चलनिधि

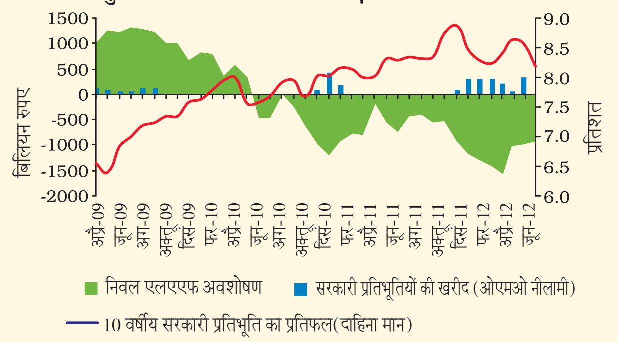

चार्ट 2 : द्वितीयक बाजार में मूल्य-मात्रा में उतार-चढ़ाव

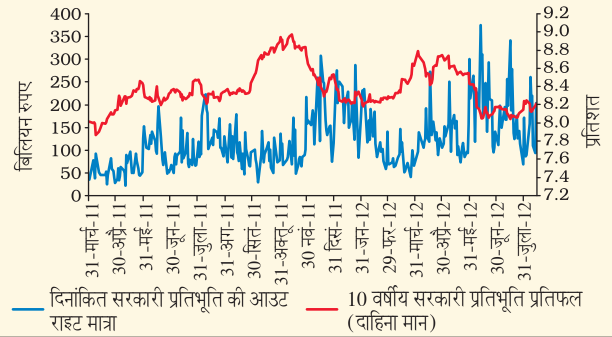

2012-13 के दौरान (13 अगस्त तक), रिज़र्व बैंक ने खुले बाजार परिचालन नीलामी खरीद के जरिए 591 बिलियन रुपए की टिकाऊ प्रकृति की चलनिधि और अनॉनिमस ट्रेडिंग प्लेटफार्म पर प्रतिभूतियों की खरीद के जरिए लगभग 222 बिलियन रुपए डाले। रिज़र्व बैंक द्वारा मौद्रिक नीति, 2012-13 की पहली तिमाही समीक्षा (31 जुलाई 2012) में एसएलआर में एक प्रतिशत की कटौती कर इसे 24 से 23 प्रतिशत किए जाने के बाद सरकारी प्रतिभूतियों के प्रतिफल में वृद्धि हुई।

II.4.14 सरकारी प्रतिभूति बाजार में लेन-देन की दैनिक औसत मात्रा, जो 2010-11 के दौरान 105 बिलियन रुपए थी, वर्ष 2011-12 में बढ़कर लगभग 130 बिलियन रुपए हो गई। 2012-13 की पहली तिमाही में दैनिक औसत मात्रा 183 बिलियन रुपए रही। लेन-देन की मात्रा सामान्यतया 10 वर्षीय प्रतिफल में होने वाले उतार-चढ़ाव के विपर्यय की स्थिति में रही।

इक्विटी बाजार सूचकांक विदेशी संस्थागत अंतर्प्रवाह और समष्टिआर्थिक गतिविधियां प्रतिबिंबित करता है

II.4.15 वैश्विक बाजार की तर्ज पर 2011-12 के अधिकांश समय भारतीय इक्विटी कीमतों में गिरावट का रुझान जारी रहा। तीन तिमाहियों तक कमजोर रहने के बाद, भारतीय इक्विटी बाजार में विदेशी संस्थागत निवेशकों से मिली नई सहायता, मुद्रास्फीति में कमी और वैश्विक इक्विटी बाजार में तेजी के रुख के चलते चौथी तिमाही में तेज रिकवरी देखी गई। कुल मिलाकर, वैश्विक गतिविधियों, समष्टि आर्थिक संकेतकों के कमजोर बने रहने और रुपए में गिरावट के कारण भारतीय इक्विटी बाजार कमजोर बना रहा (परिशिष्ट सारणी सं.12)। वर्ष 2011-12 के दौरान, दो महत्त्वपूर्ण इक्विटी सूचकांकों - बीएसई सेंसेक्स और एसएंडपी सीएनएक्स निफ्टी - में क्रमशः 10.5 प्रतिशत और 9.2 प्रतिशत की गिरावट आयी (चार्ट II.30)।

चार्ट II.30: इक्विटी बाजार में उतार-चढ़ाव

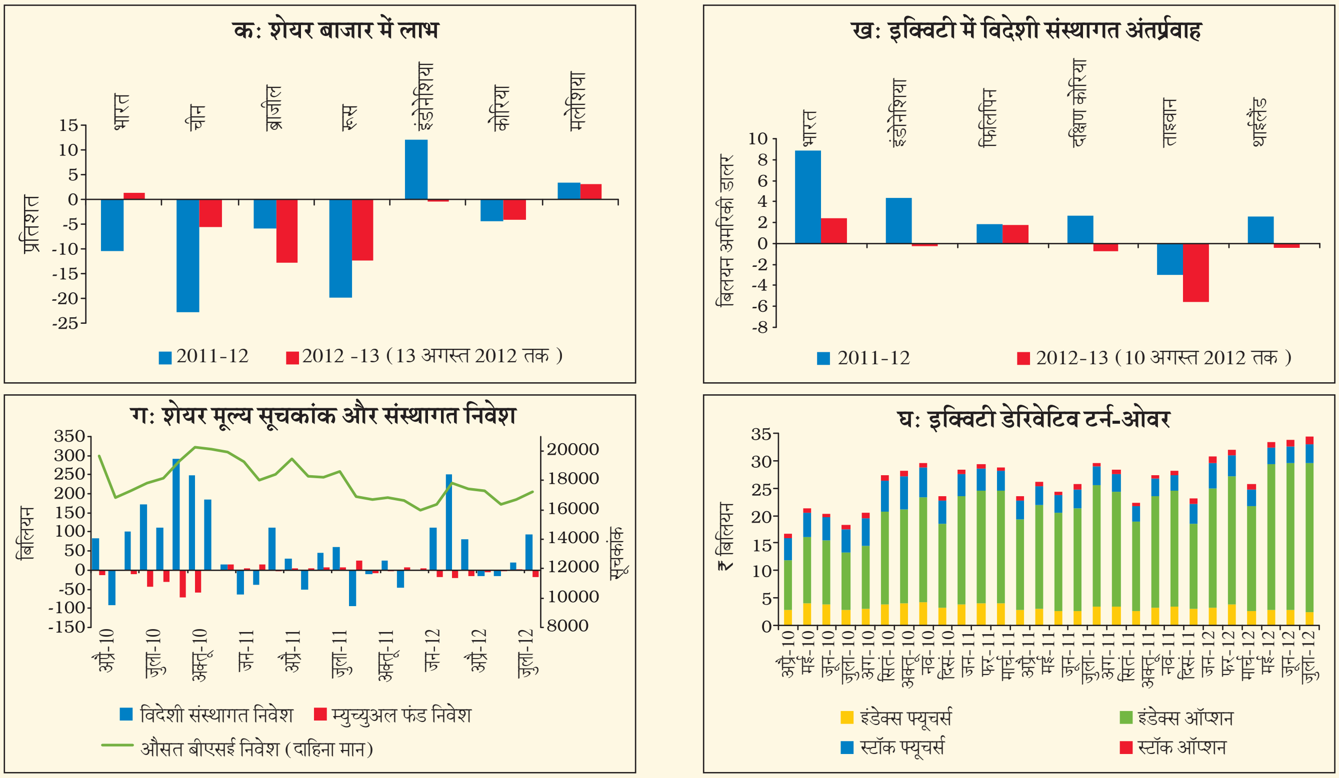

II.4.16 वर्ष 2012-13 के दौरान, विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा किए गए बहिर्वाह, धीमी घरेलू वृद्धि की चिंता, भारत की प्रमुख सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों के राजस्व में कमजोर संभावनाएं और यूरो क्षेत्र की नई अनिश्चितताओं के कारण भारतीय इक्विटी बाजार कमजोरी के साथ शुरु हुए। भारत की दीर्घावधि रेटिंग संभावना के स्थिर से डाउनग्रेड होकर नकारात्मक होने, पूर्वव्यापी कर तथा एंटी-एवॉयडेंस रूल्स (जीएएआर) से जुड़ी चिंताओं और रुपए के लुढ़कने के कारण निवेश उत्साह प्रभावित हुआ। तथापि, जून 2012 के उत्तरार्ध में, इक्विटी बाजार में विदेशी संस्थागत निवेशकों के निवेश में तेजी होने, सरकार द्वारा पूर्वव्यापी कर एवं जीएएआर पर दिए गए स्पष्टीकरण और इन्फ्रास्ट्रक्चर क्षेत्र में निवेश तेज करने के सरकार के निर्णय के कारण बाजार में सुधार देखा गया। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं द्वारा वृद्धि को बढ़ावा देने वाली नीतिगत कार्रवाइयों और यूरोपीय काउंसिल द्वारा यूरो क्षेत्र की सरकारों और बैंकों को मदद देने के निर्णय से भी बाजार का उत्साह बढ़ने में मदद मिली।

II.4.17 इसके बावजूद, 2012-13 में, बीएसई सेंसेक्स और एसएंडपी सीएनएक्स निफ्टी में वर्ष-दर-वर्ष आधार पर क्रमशः 7.5 प्रतिशत और 6.5 प्रतिशत की गिरावट हुई और विदेशी संस्थागत निवेशकों तथा म्यूच्युअल फंडों ने 2012-13 की पहली तिमाही में क्रमशः 6.6 बिलियन रुपए और 6.4 बिलियन रुपए के शेयर बेचे हैं। तथापि, 2012-13 की दूसरी तिमाही में अब तक, (13 अगस्त 2012) विदेशी संस्थागत निवेशकों ने 136.0 बिलियन रुपए के शेयर खरीदे हैं जबकि म्यूच्युअल फंडों ने 28.9 बिलियन रुपए के शेयर बेचे हैं। इसके अनुरूप बीएसई सेंसेक्स और एसएंडपी सीएनएक्स निफ्टी में क्रमशः 4.7 प्रतिशत और 5.4 प्रतिशत की रिकवरी हुई है।

II.4.18 वर्ष के दौरान भारतीय इक्विटी डेरिवेटिव क्षेत्र के टर्नओवर में काफी वृद्धि हुई। डेरिवेटिव के कुल टर्नओवर में इंडेक्स ऑप्शन क्षेत्र का हिस्सा सबसे अधिक रहा। (चार्ट II.30घ, परिशिष्ट सारणी सं.13)

सुस्त प्राथमिक बाजार मोटे तौर पर दबा हुआ उत्साह प्रतिबिंबित करता है

II.4.19 घरेलू पूंजी बाजार के प्राथमिक क्षेत्र में 2011-12 में पिछले वर्ष की तुलना में निधि की उगाही काफी कम रही (65.8 प्रतिशत)। द्वितीयक बाजार की सुस्त स्थिति और सूचीबद्ध होने के

बाद आईपीओ के खराब प्रदर्शन से निवेशकों और प्रमोटरों का उत्साह प्रभावित हुआ। अक्तूबर-जनवरी 2012 के दौरान जब निवेशकों की जोखिम लेने की भूख़ कम थी, तब प्रतिष्ठान सार्वजनिक निर्गम के जरिए निधि जुटाने से दूर ही रहे। प्राथमिक बाजार में कोई सार्वजनिक निर्गम नहीं हुआ। तथापि, फरवरी-जून 2012 के दौरान, प्राथमिक बाजार में कम निर्गमन हुए जो धीमी रिकवरी प्रतिबिंबित करता है। कुल मिलाकर, वर्ष के दौरान अब तक प्राथमिक बाजार के उत्साह में सुस्ती बनी रही।

II.4.20 किसी नई परियोजना में, इक्विटी पूंजी कुल पूंजी का एक आवश्यक घटक होता है। सुस्त आईपीओ बाजार में जनता से इक्विटी पूंजी जुटाना काफी मुश्किल होता है। इसके अलावा, इक्विटी पूंजी की अनुपस्थिति में ऐसे प्रतिष्ठानों के लिए कर्ज जुटाना मुश्किल है जो पहले से ही काफी अधिक लीवरेज स्थिति में रहते हैं। इस प्रकार, आईपीओ बाजार की सुस्ती से भी समग्र मंद निवेश प्रभावित हुआ होगा।

II.4.21 2011-12 के दौरान, यूरो क्षेत्र में कर्ज संकट के जारी रहने के चलते यूरोपीय बैंकिंग प्रणाली में चलनिधि की अनिश्चित स्थिति के कारण बाह्य स्तर पर यूरो निर्गम के जरिए जुटायी गई निधि भी काफी कम थी।

घरेलू और वैश्विक स्तर पर चिंता के कारण विनिमय दर अस्थिर रही

II.4.22 अगस्त-दिसंबर 2011 के दौरान वैश्विक अनिश्चितताओं के चलते पूंजी अंतर्वाह में कमी के कारण करेंसी बाजार में दबाव बने रहे। तथापि, 2011-12 की चौथी तिमाही में पूंजी अंतर्वाह में तेजी और डॉलर की आपूर्ति सुधारने तथा सट्टाबाजारी रोकने के प्रयोजन से किए गए नीतिगत उपायों के प्रभाव के कारण स्थिति में कुछ सुधार हुआ (चार्ट II.31)। वर्ष 2011-12 के दौरान अमेरिकी डॉलर के मुकाबले रुपये में लगभग 13 प्रतिशत की सांकेतिक गिरावट के चलते 6, 30 और 36 करेंसी वाले भारित वास्तविक प्रभावी विनिमय दर (आरईईआर) में 7-8 प्रतिशत के दायरे में गिरावट हुई (परिशिष्ट सारणी सं.14)।

II.4.23 2011-12 की पहली छमाही के दौरान, करेंसी फ्यूचर्स के टर्नओवर में वृद्धि का रुख देखा गया, लेकिन इसके बाद यह दायरे में रहा।

आवास मूल्यों में तेजी बनी रही

II.4.24 बंधक-दरों में वृद्धि के बावजूद समूचे राष्ट्रीय स्तर पर आवास मूल्यों में तेजी बनी रही। रिज़र्व बैंक का आवास मूल्य

चार्ट II.31 : प्रमुख करेंसियों की तुलना में विनिमय दर में उतार-चढ़ाव

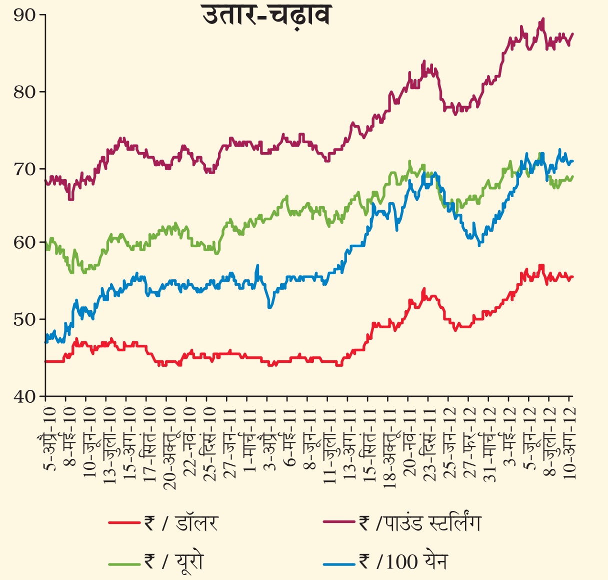

सूचकांक जो नौ शहरों के संबंधित राज्य सरकारों के पंजीकरण प्राधिकारियों से जुटाए गए आवासीय संपत्ति मूल्य पर आधारित है, उसमें अखिल भारतीय स्तर पर और चेन्नै को छोड़कर सभी संबंधित घटक शहरों के स्तर पर वर्ष 2011-12 के दौरान (चारों तिमाहियों का औसत) वृद्धि हुई। यद्यपि 2011-12 (चारों तिमाहियों का औसत) के दौरान आवासीय लेन-देन मात्रा सूचकांक में अखिल भारतीय स्तर पर गिरावट आयी है, तब भी लखनऊ, कोलकाता, चेन्नै, जयपुर और कानपुर में इसमें काफी तेजी देखी गई। (चार्ट II.32)।

II.4.25 पिछले दो वर्षों से आवास मूल्य मुद्रास्फीति कई तिमाहियों से 16-25 प्रतिशत दायरे में बनी हुई है। सोने की कीमतें 14-40 प्रतिशत से भी अधिक तेज गति से बढ़ीं हैं। इन दो बाजारों से बचतकर्ताओं को न केवल मुद्रास्फीति का सामना करने में प्रभावी सुरक्षित तरीका उपलब्ध हो पाया है बल्कि उन्हें ऊंची मुद्रास्फीति के बीच बेहतर वास्तविक रिटर्न अर्जित करने का अवसर मिला है। तथापि यह देखते हुए कि आवास और सोने की कीमतें मुद्रास्फीति से आगे चल रही हैं, जोखिमों को रोकने की जरूरत है। अप्रैल 2012 में रिज़र्व बैंक ने ऐसे एनबीएफसी को मिलने वाले बैंक कर्ज के संबंध में विवेकपूर्ण उपाय किए जो एनबीएफसी सोने की जमानत पर उधार देने का कारोबार करते हैं। यद्यपि, आवासीय और वाणिज्यिक रीयल इस्टेट क्षेत्र को मिलने वाले ऋण में कमी

चार्ट II.32: आवास बाजार में प्रवृत्ति

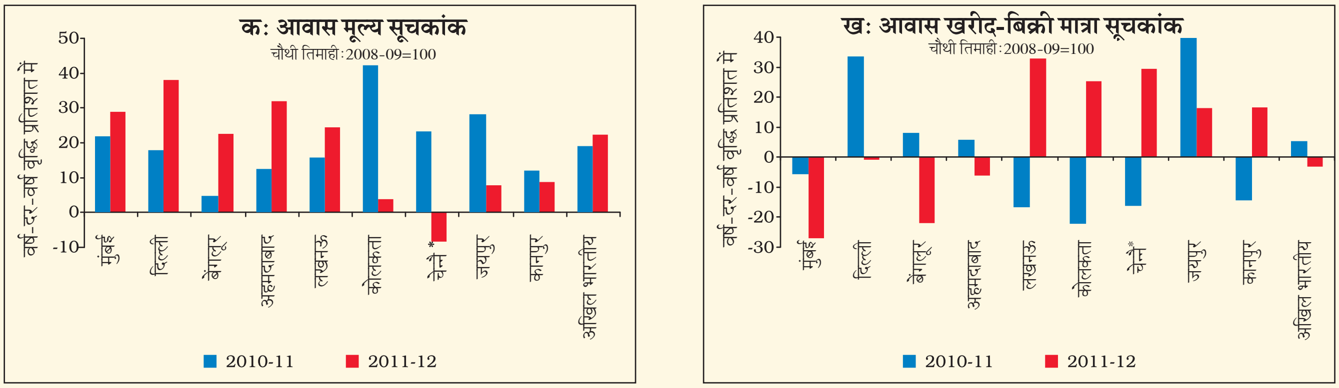

टिप्पणी : 1. अखिल भारतीय सूचकांक शहरी सूचकांकों का एक भारित औसत है जिसमें जन संख्या अनुपात को भार के रूप में लिया गया है।
2. चेन्नै सूचकांक आवासीय और वाणिज्यिक संपत्तियों पर आधारित हैं।

हुई है, तब भी एक कड़ी निगरानी आवश्यक है क्योंकि आवासीय मूल्य मुद्रास्फीति कम नहीं हुई है। रिज़र्व बैंक समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से आगामी आस्ति मूल्यों पर निगरानी रखेगा।

II.5 सरकारी वित्त

2011-12 में राजकोषीय स्थिति लक्ष्य के अनुरूप नहीं रही और इससे समष्टि-अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई

II.5.1 वर्ष 2011-12 में केंद्रीय वित्त में काफी अधिक गिरावट देखी गई क्योंकि कर राजस्व में कमी और व्यय में वृद्धि के कारण महत्त्वपूर्ण घाटा संकेतक बजट अनुमान से काफी अधिक रहे (परिशिष्ट सारणी 15)। इससे राजकोषीय सुदृढ़ीकरण प्रक्रिया को धक्का लगा और अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई। वर्तमान संकेत यह है कि यदि तुरंत निवारक उपाय नहीं किए गए तो 2012-13 में पुनः राजकोषीय लक्ष्य हासिल करने में चूक हो सकती है।

II.5.2 घरेलू और बाह्य दोनों स्तरों पर कई कारकों के कारण घाटा संकेतक बढ़ते गए। कच्चे तेल की अंतरराष्ट्रीय कीमतों में तेजी, पेट्रोलियम उत्पादों पर अप्रत्यक्ष करों में कटौती, आर्थिक वृद्धि में आशा से अधिक गिरावट के चलते राजस्व में कमी और विनिवेश में अनुमान से कम प्राप्तियां होने के कारण 2011-12 में वित्तीय लक्ष्य हासिल करने में चूक हुई। परिणामस्वरूप, 2011-12 में, सकल देशी उत्पाद (जीडीपी) की तुलना में सकल राजकोषीय घाटा (जीएफडी) अनुपात 4.6 प्रतिशत के बजटीय स्तर से बढ़कर 5.8 प्रतिशत हो गया, तथापि योजनागत व्यय में हुई कुछ कटौती से राजकोषीय स्थिति की बिगड़ती गति थोड़ी थम गई।

2012-13 के लिए बजट रुझान और मध्यम अवधि का रोडमैप आगे वित्तीय सुदृढ़ीकरण दर्शाता है लेकिन आशंकाएं अभी भी बनी हुई हैं

II.5.3 2012-13 के केंद्रीय बजट में वित्तीय सुदृढ़ीकरण के लिए एक रोडमैप तैयार किया गया है। इस रोडमैप में 2012-13 की शुरुआत से जीएफडी-जीडीपी अनुपात को काफी कम करना और अगले दो वर्षों में रोलिंग लक्ष्य के तहत राजस्व घाटा-जीडीपी अनुपात तथा जीएफडी-जीडीपी अनुपात को आगे और कम करते हुए इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाना शामिल है। 2012-13 के दौरान (ब.अ.) आरडी-जीडीपी अनुपात में 0.9 प्रतिशत और जीएफडी-जीडीपी अनुपात में 0.7 प्रतिशत कमी की परिकल्पना से अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को अधिक ऋण मिलने की गुंजाइश बढ़ेगी। राजस्व बढ़ाकर (विशेषकर अप्रत्यक्ष कर और स्पेक्ट्रम नीलामी प्राप्ति के जरिए कर से इतर राजस्व जैसे उपाय) और व्यय में नियंत्रण करके जैसे सब्सिडी पर होनेवाले व्यय को जीडीपी के 2 प्रतिशत से नीचे रखकर इसे हासिल किया जाना है। सेवा कर का दायरा बढ़ाने, और संकट के समय विभिन्न अप्रत्यक्ष करों में की गई कटौती को आंशिक रूप से वापस लेने के कारण केंद्र सरकार की कर प्राप्तियां बढ़ सकती हैं। विशेषकर कर में जैसी बढ़ोत्तरी सोची गई थी, यदि उसके अनुरूप प्राप्ति न हो पाए और सब्सिडी पर अधिकतम सीमा का पालन न हो पाए तो 2012-13 में राजकोषीय लक्ष्य प्राप्त करना संदेहास्पद बना रहेगा। केंद्रीय बजट के मध्यम अवधि के राजकोषीय रोडमैप में यह परिकल्पना की गई कि राजकोषीय स्थिति को दुरुस्त करने की रफ्तार तेरहवें वित्त आयोग द्वारा तय किए गए लक्ष्य की तुलना में धीमी रहेगी (चार्ट II.33)। 2012-13 की पहली तिमाही के दौरान, केंद्र सरकार का

चार्ट II.33: केंद्र सरकार के महत्त्वपूर्ण घाटा संकेतक

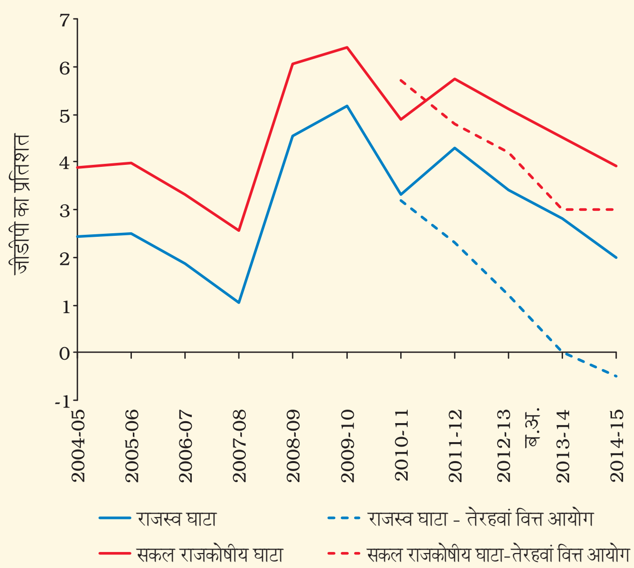

राजकोषीय घाटा पूरे वर्ष के लिए तय किए गए बजट अनुमान के एक तिहाई से अधिक था।

II.5.4 राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम 2003 में संशोधन जिसमें, अन्य बातों के साथ - साथ, ''मध्यम अवधि व्यय ढांचा विवरण'' शामिल है, 2012-13 में वित्तीय सुदृढ़ीकरण की दिशा में किया गया एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। संशोधित राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम के अनुसार, सरकार 2014-15 तक प्रभावी तरीके से राजस्व घाटे (पूंजीगत आस्ति के सृजन में राजस्व व्यय से मिलने वाले अनुदान को छोड़कर) को खत्म करने का प्रयास करेगी और इसप्रकार राजस्व खाते में घाटे के संरचनागत घटकों के करेक्शन को टार्गेट करेगी। ''मध्यम अवधि व्यय ढांचा विवरणटट लोक व्यय प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार लाने के प्रयोजन से एक रणनीति के तहत व्यय संकेतकों के लिए तीन-वर्षीय रोलिंग लक्ष्य तय करेगा।

II.5.5 2011-12 के दौरान केंद्र के राजकोषीय असंतुलन बढ़ने के बावजूद, सांकेतिक जीडीपी की वृद्धि दर ऊंची रहने के कारण, इसका कर्ज-जीडीपी अनुपात 2010-11 के 52.8 प्रतिशत से घटकर 2011-12 में 51.9 प्रतिशत हो गया (सं.अ.)। केंद्र सरकार के घाटे के वित्तीयन में उपयोग न की गई राशि (उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय लघु बचत निधि के वे घटक जिनका राज्य सरकार की प्रतिभूतियों में निवेश किया जाता है और बाजार स्थिरीकरण योजना के तहत सृजित की गई देयताएं) को छोड़कर, जीडीपी की तुलना में केंद्र सरकार की बकाया देयताओं का अनुपात 2011-12 में जीडीपी के 45.7 प्रतिशत से थोड़ा गिरकर 2012-13 में जीडीपी के 45.5 प्रतिशत रहने का अनुमान है (सं.अ.)।

II.5.6 रोलिंग लक्ष्य में किए गए पूर्वानुमान के अनुसार, 2014-15 तक बकाया देयता-जीडीपी अनुपात तेरहवें वित्त आयोग द्वारा तय किए गए 44.8 प्रतिशत के स्तर से कम रहने की संभावना है। तथापि, लंबी अवधि में केंद्र सरकार के कर्ज की वहनीयता के आकलन के लिए विभिन्न तरीकों का प्रयोग कर व्यापक विश्लेषण करने की आवश्यकता है (बॉक्स II.14)।

कर-जीडीपी अनुपात को संकट से पहले के स्तर पर लाने के लिए कर सुधारों को तेजी से कार्यान्वित करना

II.5.7 2012-13 के दौरान, सरकार ने मानक उत्पाद कर दर को 10 प्रतिशत से 12 प्रतिशत करने के फैसले को वापस लेकर, सेवा कर का दायरा बढ़ाकर और सीमा शुल्क दरों को युक्तिसंगत बनाकर कर-जीडीपी अनुपात में 2011-12 (सं.अ.) के मुकाबले 0.5 प्रतिशत अंक वृद्धि करने का प्रयास किया और यह अनुपात बढ़कर 10.6 प्रतिशत हो गया। सकल कर राजस्व में बजटीय वृद्धि (19.5 प्रतिशत) संकट से पहले वित्तीय सुदृढ़ीकरण के दौर (2004-05 से 2007-08) में रिकार्ड की गई औसत वृद्धि (23.6 प्रतिशत) से कम रही और इससे आर्थिक स्थिति में वर्तमान गिरावट परिलक्षित होती है। यद्यपि, प्रत्यक्ष कर प्राप्तियों जैसे कॉर्पोरेशन कर और आयकर में बजटीय वृद्धि परंपरा के अनुरूप रही है लेकिन केंद्रीय उत्पाद और सीमा शुल्कों से मिलने वाली प्राप्तियां संकट से पहले के रुझानों से काफी अधिक हैं। यह स्थिति औद्योगिक गतिविधियों और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में निरंतर गिरावट होने से उत्पन्न होनेवाली अधोगामी जोखिम के अधीन है।

II.5.8 सेवा कर भी 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दिया गया। सेवा कर का दायरा बढ़ाना और निगेटिव सूची में शामिल सेवाओं को छोड़कर अन्य सभी सेवाओं को इसके दायरे में लाना सही दिशा में उठाया गया एक कदम है लेकिन इसे सावधानीपूर्वक लागू करने की जरूरत है। केंद्रीय उत्पाद कर और सेवा कर को सरल बनाने के लिए भी उपाय किए गए और इन उपायों में दोनों करों के लिए एकल सरलीकृत पंजीकरण फार्म तथा एकल रिटर्न की सुविधा की शुरुआत शामिल थी। माल एवं सेवा कर (जीएसटी) नेटवर्क को शुरू करने हेतु कदम उठाए जा रहे हैं और जब कभी जीएसटी लागू होगा उसमें यह एक ''राष्ट्रीय सूचना उपयोगिता'' के रूप में कार्य

बॉक्स II.14
लोक कर्ज की वहनीयता

परंपरागत रूप से, राजकोषीय वहनीयता का मूल्यांकन संकेतक विश्लेषण के संदर्भ में किया गया है। कर्ज की वहनीयता के मूल्यांकन के लिए मानक तरीका यह है कि जीडीपी की तुलना में सरकारी कर्ज के अनुपात पर फोकस किया जाए। कोई कर्ज तब वहनीय माना जाएगा जब कर्ज-जीडीपी अनुपात स्थिर हो या कुछ समय से कम हो रहा हो, जबकि इस अनुपात में निरंतर वृद्धि को अवहनीय माना जाता है। कर्ज-जीडीपी अनुपात का मूल्यांकन कर्ज के वास्तविक ब्याज दर, अर्थव्यवस्था की वास्तविक वृद्धि दर, सरकारी बजट के 'प्राथमिक संतुलन' (अधिशेष या घाटे में ब्याज-भुगतान को घटाकर) और पहले की अवधि के कर्ज अनुपात पर निर्भर करती है। विश्लेषक इस संबंध का प्रयोग प्राथमिक अधिशेष का पता करने के लिए भी करते हैं ताकि भविष्य में कर्ज को स्थिर या कम किया जा सके।

कर्ज की वहनीयता से जुड़े मुद्दे पर कई अध्ययनों में अभिमत दिए गए हैं और एक विशेष प्रश्न उठाया गया है - ''क्या कर्ज संचित करने की ऐसी कोई सीमा है जिसके बाद कर्ज का बोझ पूंजी संचयन और वृद्धि को काफी प्रभावित करने लगता है? कर्ज वहनीयता फ्रेमवर्क सबसे पहले डॉमर (1944) द्वारा विकसित किया गया था और इस फ्रेमवर्क ने यह प्रतिपादित किया कि आय में बढ़ोत्तरी की दर ब्याज-दर से अधिक होना वहनीयता के लिए एक आवश्यक शर्त है। डॉमर ने बताया कि जीडीपी की तुलना में समग्र घाटा का स्थिर अनुपात यह सुनिश्चित करता है कि कर्ज-जीडीपी अनुपात और ब्याज-जीडीपी अनुपात - दोनों एक निश्चित मान पर एक जैसे हो जाएं। 1980 के दशक में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के साथ ही वहनीयता की चर्चा में एक नया मोड़ आया। डॉमर के अनुसार लोक वित्त वहनीयता की मूल्यांकन प्रक्रिया में स्थिर घाटे की स्थिति में कर दर प्रभावों की जांच करना पर्याप्त नहीं रह गया था। यह आवश्यक हो गया कि वर्तमान नीतियों के कारण भविष्य में होने वाले घाटे के रुख का आकलन किया जाए। ब्लैन्शर्द और अन्य (1990) ने वहनीयता के लिए दो आवश्यक शर्तें प्रस्तावित कीं : (क) कर्ज-सकल राष्ट्रीय उत्पाद अनुपात का अंततः अपने प्रारंभिक स्तर पर लौटना, (ख) प्राथमिक घाटा-सकल राष्ट्रीय उत्पाद अनुपात का वर्तमान डिस्काउंटेड मान कर्ज-सकल राष्ट्रीय उत्पाद के वर्तमान स्तर के ऋणात्मक के बराबर हो जाए।

लोक वित्त की 'वहनीयताट का मूल्यांकन करने के प्रायोगिक अध्ययन में इन सभी शर्तों (डॉमर तथा ब्लैंशर्द और अन्य) का प्रयोग किया गया है। लोक वित्त की वहनीयता का स्तर अलग-अलग देशों में उनकी कई आर्थिक और राजीनीतिक विशेषताओं पर निर्भर करते हुए अलग-अलग होता है। आम तौर पर उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में यह औद्योगिकीकृत देशों में अधिक होता है। औद्योगिकीकृत अर्थव्यवस्था में ऐतिहासिक रूप से यह देखा गया है कि अपेक्षाकृत अधिक प्राथमिक अधिशेष संचित कर लेने की अपनी बड़ी क्षमता के कारण वे विपरीत परिस्थितियों में भी अपने कर्ज को वहनीय स्तर तक रख पाते हैं जबकि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में आम तौर पर ऐसी विश्वसनीयता नहीं देखने को मिलती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इन अर्थव्यवस्थाओं में राजस्व की स्थिति कमजोर होती है (कम प्रतिफल और अधिक अस्थिरता के साथ) और आर्थिक उन्नति के (विशेषकर लैटिन अमेरिका के मामले में) के दौरान व्यय पर नियंत्रण कम प्रभावी होता है। तथापि, उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में अलग-अलग क्षेत्रों में काफी अंतर देखा गया है और अन्य क्षेत्रों की तुलना में एशियाई देश कर्ज की वहनीयता सुनिश्चित करने में अधिक प्रयास करते देखे गए हैं।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी लोक और बाह्य कर्ज की वहनीयता का विश्लेषण करने के लिए एक औपचारिक फ्रेमवर्क तैयार किया है ताकि संभावित संकट को बेहतर ढंग से पहचान कर उन्हें रोकने और उनका समाधान करने के लिए एक तरीका विकसित हो पाए। यह फ्रेमवर्क 2002 में शुरू हो गया। इस फ्रेमवर्क का उद्देश्य तीन स्तरों पर है:(i) यह कर्ज की वर्तमान स्थिति, इसकी परिपक्वता की संरचना, क्या यह स्थिर या अस्थिर दर पर है, क्या यह सूचकांकित है और किसने इसे धारित किया है, से जुड़ी बातों का मूल्यांकन करता है; (ii) यह फ्रेमवर्क काफी पहले ही कर्ज की संरचना और नीति की रूपरेखा से जुड़े जोखिमों की पहचान कर लेता है ताकि भुगतान में कठिनाई आने से पहले ही नीतिगत सुधार किया जा सके; (iii) ऐसी स्थिति में जब इस प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न होने लगी हों या उनके उत्पन्न होने की संभावना हो तो यह फ्रेमवर्क कर्ज-स्थिरीकरण के लिए वैकल्पिक नीतिगत रास्तों के प्रभावों की जांच करता है। इस फ्रेमवर्क में दो अनुपूरक घटक हैंः कुल लोक कर्ज और बाह्य कर्ज की वहनीयता का विश्लेषण। प्रत्येक घटक में एक बेसलाइन परिदृश्य शामिल किया गया है और यह बेसलाइन परिदृश्य ऐसी समष्टि आर्थिक संभावनाओं पर आधारित है जिसमें सरकार की तय नीतियों तथा साथ ही मुख्य अनुमानों और पैरामीटर का स्पष्ट उल्लेख हो। इस बेसलाइन परिदृश्य में बेसलाइन परिदृश्य पर लागू कई संवेदनशीलता परीक्षण शामिल किए गए हैं और ये परीक्षण नीति चरों, समष्टि-आर्थिक विकास और वित्तीय लागत से जुड़े विभिन्न अनुमानों के जरिए कर्ज की स्थिति में एक संभावित ऊपरी सीमा तय करने में मदद करते हैं। इस बेसलाइन परिदृश्य के तहत कर्ज संकेतकों की दिशा और स्ट्रेस टेस्ट के जरिए किसी राष्ट्र के भुगतान संकट से जुड़े जोखिमों का आकलन किया जा सकता है।

जहाँ तक भारत का सवाल है, यहाँ अधिक राजकोषीय घाटा बने रहने के एक दशक के बाद, 2003 में एक नियम आधारित राजकोषीय फ्रेमवर्क नामतः राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध (एफआरबीएम) अधिनियम बनाया गया जिसका उद्देश्य यह था कि राजकोषीय प्रबंधन के संबंध में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक भागीदारी सुनिश्चित की जा सके और यह भी सुनिश्चित हो कि दीर्घकालिक समष्टि-आर्थिक स्थिरता के लिए राजकोषीय वहनीयता आवश्यक है। यह एक संयोग ही था कि राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम को ठीक उसी समय कार्यान्वित किया गया जब 2004-05 और 2007-08 के बीच केंद्र सरकार के राजकोषीय घाटे में लगभग 1.8 प्रतिशत की गिरावट आयी थी। संशोधित राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम में व्यय की गुणवत्ता में सुधार लाने के प्रयोजन से एक मध्यम अवधि व्यय फ्रेमवर्क विवरण शामिल किया गया है। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन अधिनियम के मूल रूप और साथ ही संशोधित रूप में कर्ज लक्ष्यों को रोलिंग लक्ष्य फ्रेमवर्क के तहत प्रतिपादित किया गया है। सभी राज्य सरकारों ने अपने-अपने राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियमों को पारित कर दिया है जिसमें से 27 राज्यों ने तेरहवें वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार अपने-अपने अधिनियमों में संशोधन भी कर लिया है। तदनुसार, राज्यों ने अपने व्यक्तिगत कर्ज-जीएसडीपी अनुपात को धीरे-धीरे कम करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए हैं। हाल के अध्ययन में, टोपालोवा और नाइबर्ग ने बताया है कि 2015-16 तक जीडीपी की तुलना में कर्ज अनुपात का 60-65 प्रतिशत के दायरे में होना भारत के लिए उपयुक्त/वहनीय हो सकता है। तेरहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट में 2014-15 तक के लिए इंगित किए गए 67.8 प्रतिशत से यह कम है।

संदर्भ:

ओ. ब्लैन्शर्द, जे.सी. चौरकी, आर.पी हेगमान और एम.सार्टर (1990), ''द सस्टेनबिलिटी ऑफ फिस्कल पॉलिसीः *न्यू आन्सर्स टू ओल्ड क्वेश्चन्स''*,*ओईसीडी, इकॉनॉमिक स्टडीज,* नं.15, ऑटम।

डब्ल्यू. एच. ब्यूटर (1985), ''ए गाइट टु पब्लिक सेक्टर डेट एंड डेफिसिट'', *इकॉनॉमिक पॉलिसी* , खंड1,नं.1, नवंबर।

ई.डी. डॉमर (1944), ''द बर्डेन ऑफ द डेट एंड द नेशनल इनकम'', *अमेरिकन इकॉनॉमिक रिव्यू,* खंड 34, नं. 4, दिसंबर।

आईएमएफ (2003), *''पब्लिक डेट इन इमर्जिंग मार्केट्स'', वर्ल्ड इकॉनॉमिक अउटलुक, सितंबर।*

पी.बी. टोपालोवा और डैन नाइबर्ग (2010), ''व्हाट लेवल ऑफ पब्लिक डेट कुड इंडिया टार्गेट?'', *आईएमएफ वर्किंग पेपर , डब्ल्यूपी/10/7, जनवरी।*

करेगा। इन सकारात्मक उपायों के बावजूद, प्रत्यक्ष कर कोड और माल एवं सेवा कर को तेजी से लागू करने की जरूरत है ताकि कर-जीडीपी अनुपात को संकट के पूर्व स्तर पर लाया जा सके। विशेषकर भारत में सकल कर-जीडीपी अनुपात उन्नत अर्थव्यवस्थाओं और उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के मुकाबले काफी कम रहा है और 2007 से इसमें कमी होती रही है (चार्ट II.34)।

II.5.9 2011-12 और पहले की अवधि की ही भांति 2012-13 में भी विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली बजट अनुमानित राशि में संभावित कमी के कारण राजस्व क्षेत्र में एक और अधोगामी जोखिम उत्पन्न हो सकता है (चार्ट II.35)। विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली राशि में अनिश्चितता बनी हुई है, इसलिए जरूरत इस बात की है कि राजकोषीय असंतुलन का मूल्यांकन करने में विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली राशि को हिसाब में न लिया जाए। इसलिए, सरकार द्वारा राजकोषीय स्थिति को दुरुस्त करने की प्रक्रिया कितनी टिकाऊ है, इसका मूल्यांकन करने में ''वित्तीयन अंतराल'' एक अहम् संकेतक है और जैसाकि प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद द्वारा तय किया था ''वित्तीयन अंतराल'' में सकल राजकोषीय घाटे की गणना में प्रयुक्त विनिवेश से होनेवाली प्राप्तियां शामिल नहीं है (चार्ट II.36)। यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि सरकार 2014-15 तक विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली राशि का इस्तेमाल बजटीय व्यय के वित्तीयन में करने के बजाय इसे राष्ट्रीय निवेश निधि में क्रेडिट करने की पुरानी नीति की ओर वापस आना चाहती है। (बॉक्स II.15)

चार्ट II.35: विनिवेश प्राप्तियां - बजट बनाम वास्तविक

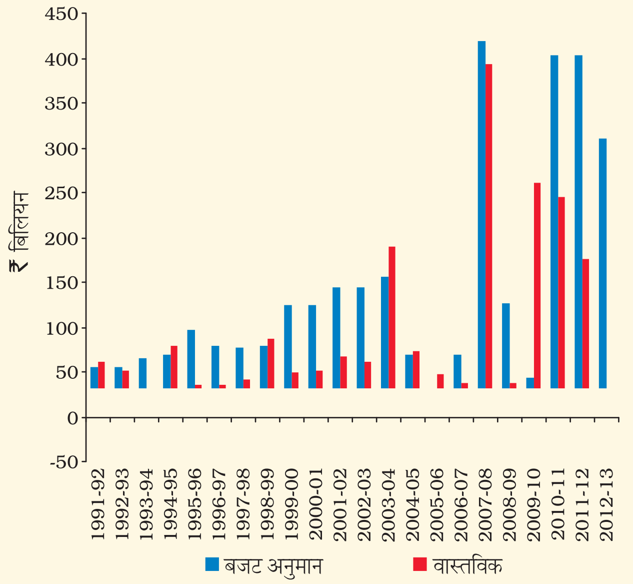

सब्सिडी पर होनेवाले व्यय में अधिकतम सीमा निर्धारित करके ही बजटीय व्यय को पूंजीगत परिव्यय में बदलना संभव हो पाएगा

II.5.10 2012-13 में राजस्व व्यय में कम वृद्धि तथा पूंजीगत व्यय (योजनागत और गैर-योजनागत दोनों घटक) में तेज वृद्धि

चार्ट II.34: सामान्य सरकारी राजस्व में रुझान

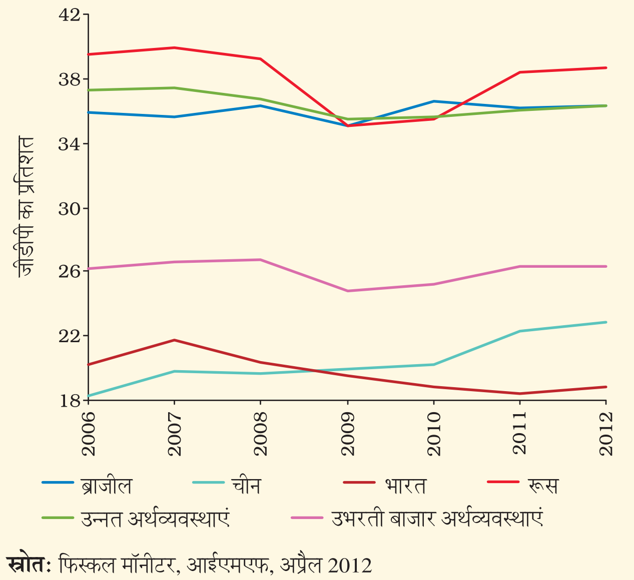

स्रोत: फिस्कल मॉनीटर, आईएमएफ, अप्रैल 2012

चार्ट II.36: जीएफडी और वित्तीयन अंतर (एफजीपी) की तुलना

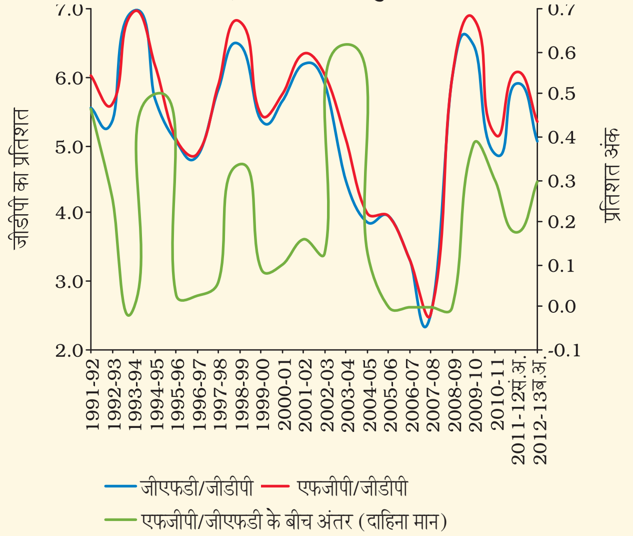

बॉक्स II.15
भारत में विनिवेश नीति

किसी विकासशील अर्थव्यवस्था की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया में सामान्यतया सरकार खुद अपने द्वारा अर्थव्यवस्था में पूंजी के सीधे सृजन से क्रमिक रूप में पीछे हटती है और इसके बाद सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में अपनी हिस्सेदारी घटाती है। इस प्रक्रिया से यह परिलक्षित होता है कि संसाधनों के प्रभावी इस्तेमाल के लिए ऐसे अवसरों की जरूरत है जिसमें निजी क्षेत्र बड़ी भागीदारी निभा सके।

भारत में विनिवेश नीति, 1991 में शुरू हुई नई औद्योगिक नीति का एक भाग थी और इसका अंतर्निहित उद्देश्य संसाधन जुटाना, अधिक निजी भागीदारी को प्रोत्साहित करना और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में अधिक जवाबदेही सुनिश्चित करना था। प्रारंभिक चरण में, लाभ कमाने वाले चुनिंदा पीएसयू में विनिवेश किया जाना था। रंगराजन समिति (1993) ने (क) रक्षा और परमाणु ऊर्जा को छोड़कर सरकारी क्षेत्र के ऐसे चुनिंदा उपक्रमों की पहचान करने जहां किसी भी स्तर तक विनिवेश किया जा सके; (ख) कामगारों के अधिकारों की उचित रक्षा के साथ विनिवेश प्रक्रिया में पारदर्शिता बरतने; (ग) विनिवेश कार्यक्रम के सुचारु रूप से कार्य करने और इसकी निगरानी के लिए किसी स्वायत्त निकाय की स्थापना करने की सिफारिश की थी। तदनुसार, सरकार को विनिवेश के स्तर, तरीके, समय और कीमत-निर्धारण के विषय में सलाह देने के लिए 1966 में विनिवेश आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग ने विनिवेश के चार तरीके सुझाएः (i) ऐसा ट्रेड सेल जिसमें किसी तय कीमत पर शेयरों की सीधी बिक्री के जरिए स्वामित्व में 100 प्रतिशत का परिवर्तन शामिल हो; (ii) ऐसी नीतिगत बिक्री जिसमें निवेश के काफी भाग के साथ प्रबंधन का नियंत्रण भी निजी उपक्रम या व्यक्ति के पास चला जाए; (iii) शेयरों का ऑफर अर्थात् निजी प्रतिष्ठानों या व्यक्तियों को शेयरों की बिक्री और (iv) आस्तियों का क्लोजर या बिक्री और कंपनी का परिसमापन। व्यावहारिक रूप में, सरकार ने अधिकांश बार विनिवेश के तीसरे तरीके का सहारा लिया है अर्थात् पीएसयू में अपने शेयरों को ऐसे शेयरधारकों को बेचना जिनके पास कम शेयर थे।

पीएसयू में विनिवेश, गैर-कर्ज पूंजी प्राप्ति लेखाशीर्ष के तहत मिलने वाली प्राप्तियों का मुख्य स्रोत है। सरकार ने टेलीकॉम, तेल, ऊर्जा, धातु एवं खनिज, ऑटोमोबाइल और आतिथ्य-सत्कार उद्योग से संबद्ध पीएसयू में अपनी हिस्सेदारी में आंशिक विनिवेश किया है। 2005-06 से 2008-09 के दौरान, विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली प्राप्तियों का इस्तेमाल बजटीय व्यय के वित्तीयन में नहीं किया गया, बल्कि इन्हें 2005 में गठित राष्ट्रीय निवेश निधि (एनआईएफ) में क्रेडिट कर दिया गया। एआईएफ के निवेश से मिलने वाले रिटर्न को कर से इतर राजस्व माना गया और सामाजिक इन्फ्रास्ट्रक्चर पर होने वाले व्यय के वित्तीयन और अर्थक्षम पीएसयू को पूंजी उपलब्ध कराने में इनका इस्तेमाल किया जाना तय किया गया। 2009-10 में सरकार ने निर्णय लिया कि तीन वर्ष की अवधि अर्थात् 2009-12 के दौरान विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली प्राप्तियों का इस्तेमाल सामाजिक क्षेत्र के ऐसे कार्यक्रम के वित्तीयन में किया जाएगा जो पूंजीगत आस्ति का सृजन करते हों। तदनुसार, विनिवेश प्राप्तियों का आंशिक इस्तेमाल ग्रामीण रोजगार, सिंचाई इन्फ्रास्ट्रक्चर और शहरी एवं ग्रामीण इन्फ्रास्ट्रक्चर से जुड़े चुनिंदा फ्लैगशिप कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय को पूरा करने में किया जा रहा है। साथ ही, एनआईएफ द्वारा पहले किए गए निवेश से मिलने वाले रिटर्न का इस्तेमाल सामाजिक क्षेत्र के ऐसे चुनिंदा कार्यक्रमों के वित्तीयन में किया जा रहा है जो शिक्षा, स्वास्थ्य तथा रोजगार को बढ़ावा देते हों और साथ ही लाभकारी एवं पुनरुत्थान योग्य पीएसयू की पूंजी निवेश आवश्यकताओं को पूरा करने में भी इनका इस्तेमाल किया जा रहा है। सरकार ने विनिवेश प्राप्तियों के इस्तेमाल की वर्तमान व्यवस्था को जारी रखने का निर्णय लिया जिसके तहत सरकार विनिवेश प्राप्तियों का इस्तेमाल 2012-13 और 2013-14 के व्यय कार्यक्रम के वित्तीयन में करेगी।

गौरतलब है कि पहले से अनुमान की गई विनिवेश प्राप्तियों का प्राप्त होना बाजार की अनिश्चितताओं के अधीन होता है। सरकार ने 21 वर्षों में से 14 वर्ष के लिए विनिवेश का जो बजट अनुमान किया था, उसे हासिल करने में वह नाकाम रही और ये वो वर्ष थे जिसमें विनिवेश प्राप्तियों का इस्तेमाल बजटीय व्यय के वित्तीयन में किया जाना था।यद्यपि विनिवेश प्रक्रिया से मिलने वाली राशि को कर्ज से इतर पूंजीगत प्राप्ति मानते हुए बजटीय व्यय के वित्तीयन में इसका इस्तेमाल करने की नीति से राजकोषीय घाटा कम होता है, लेकिन यह वांछनीय होगा कि सरकार विनिवेश प्राप्तियों को एनआईएफ में क्रेडिट करने की नीति पर वापस लौटे ताकि तदनुसार इस प्रक्रिया से राजकोषीय घाटा संबद्ध न रहे।

संदर्भः

ए. वर्मा (2009), ''डिसइन्वेस्टमेंट प्रोसेस इन इंडिया'', *शोध समीक्षा और मूल्यांकन,* खंड II, अंक-6 (09 फरवरी-09 अप्रैल)। http://www.divest.nic.in/

होने की संभावना है। तथापि, सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह 2012-13 में गैर-योजनागत व्यय को बजट अनुमान के अंदर नियंत्रित रखने लिए सब्सिडी पर होने वाले खर्च की अधिकतम सीमा को जीडीपी के 2 प्रतिशत तक सीमित रखने की कटिबद्धता का पालन करे। निवेशकों और अर्थव्यवस्था में उत्साह का पुनः संचार करने के प्रयोजन से विश्वसनीय राजकोषीय सुदृढ़ीकरण के साथ-साथ अधिक पूंजीगत व्यय महत्त्वपूर्ण है। उच्चतर पूंजी परिव्यय गुणक के मद्देनजर, व्यय घटकों में पूंजी परिव्यय के लिए अधिक आबंटन किए जाने से आर्थिक वृद्धि को बल मिलेगा (बॉक्स II.16)।

बॉक्स II.16
भारत में राजकोषीय गुणक

2007-09 के दौरान वैश्विक वित्तीय संकट के बाद कई देशों में आर्थिक गतिविधियों को गति देने के लिए बड़े पैमाने पर राजकोषीय सहयता उपलब्ध कराई गई और इसके चलते राजकोषीय गुणक के आकार को समझने में रुचि बढ़ गई। राजकोषीय गुणक सरकारी खर्चे या कराधान में होने वाले बदलाव के आउटपुट की प्रतिक्रियाशीलता को मापते हैं। परंपरागत रूप से, कीन्सियन सिद्धांत बताता है कि कर की तुलना में सरकारी खर्चे में गुणक अधिक होता है क्योंकि कुल मांग पर खर्च का सीधा और तुरंत प्रभाव पड़ता है। तथापि

(जारी....)

हाल के अनुसंधान कर गुणकों के अपेक्षाकृत बड़े आकार की ओर संकेत करते हैं क्योंकि कर में कटौती से भी निवेश मांग तेज हो सकती है, फिर चाहे यह तेजी निवेश क्रेडिट के जरिए सीधे तौर पर हो या श्रम की अधिक मांग होने से अप्रत्यक्ष रूप से हो, या इसके अलावा कीन्सियन चैनल के जरिए डिस्पोजेबल आय में बढ़ोत्तरी के कारण हो। इसके विपरीत, गत्यात्मक फ्रेमवर्क में कर और कर्ज के बीच रिकार्डियन समानुपात के अनुसार राजकोषीय गुणक शून्य होता है। रिकार्डियन सिद्धांत के तहत आनेवाले उपभोक्ता दूर-दृष्टि वाले होते हैं और सरकार के अंतर-कालिक बजटीय बाधाओं से परिचित होते हैं।

प्रायोगिक अध्ययनों में अर्थव्यवस्थाओं के वित्तीय गुणकों के आकलन की काफी बड़ी रेंज बताई गई है और यह रेंज निगेटिव से लेकर एक से आगे तक बताई गई है (अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, 2008), तदनुसार, इस कारण से यह प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति की प्रभावोत्पादकता को स्पष्ट मार्गदर्शन देने में असफल रहती है। प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति की प्रभावोत्पादकता केवल दी गई सहायता के आकार पर ही नहीं बल्कि इसके घटकों, जैसे कर कटौती और सरकारी खर्च के आनुपातिक महत्त्व पर भी निर्भर करती है। मौद्रिक रुझान, बैंकिंग श्रेत्र की स्वस्थता, शून्य की ओर अग्रसर करने वाली समस्याओं से होनेवाली ब्याज-दर संबंधी अड़चनें, श्रम बाजार में शिथिलता और लोक कर्ज का स्तर जैसे कारक एक-दूसरे से जुड़े रहकर काम करते हैं। कई अध्ययनों से यह मालूम हुआ है कि अपेक्षाकृत गरीब अर्थव्यवस्थाओं, अधिक खुली अर्थव्यवस्थाओं, लचीली विनिमय दर वाली अर्थव्यवस्थाओं तथा अधिक लोक कर्ज स्तर वाली अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय गुणक निम्न होता है।

इस स्थिति को देखते हुए कि भारत के वित्तीय गुणक के आकार की मात्रा बताने में अधिक अध्ययन उपलब्ध नहीं है, किसी एक अध्ययन की आवश्यकता है, विशेषकर सरकार द्वारा संकट के बाद उपलब्ध कराई गई आर्थिक सहायता के मद्देनजर यह अध्ययन और भी जरूरी हो जाता है क्योंकि इन राहतों के कारण राजकोषीय नियमों के तहत राजकोषीय संकेतकों के जो लक्ष्य तय किए गए थे उनमें काफी अंतर हो गया। 1980-81 से 2010-11 की अवधि के लिए एक प्रायोगिक अध्ययन किया गया ताकि वेक्टर ऑटो रिग्रेशन (वीएआर) फ्रेमवर्क[a] पर आधारित संयुक्त सरकारी वित्त के कुल विभिन्न खर्चे के गुणकों का आकार तय किया जा सके। अकाइक इन्फॉर्मेशन क्राइटेरिया द्वारा बताए गए लैग का प्रयोग कर वृद्धि दर के संदर्भ में वीएआर का आकलन किया जाता है।

संयुक्त सरकारी व्यय के विभिन्न घटकों (थोक मूल्य सूचकांक से अपस्फीत होकर) अर्थात् राजस्व व्यय, पूंजी परिव्यय, विकास व्यय, कुल व्यय और कर राजस्व का प्रयोग वास्तविक जीडीपी वृद्धि पर उनके द्वारा पड़ने वाले प्रभावों की जांच में किया गया है। इसके बाद इन चरों को वृद्धि दर में बदल दिया गया ताकि आघात चर की तुलना में जीडीपी में होनेवाली तात्कालिक प्रतिक्रिया अनुपात को लोच के रूप व्यक्त किया जा सके। इसके बाद इस लोच में वास्तविक खर्च-जीडीपी अनुपात से भाग देकर मध्यम अवधि गुणक निकाला जा सकता है। दीर्घावधि गुणक (जीडीपी के संदर्भ में) निकालने के लिए तात्कालिक प्रतिक्रिया को एक-साथ जोड़कर इस योग में खर्च-जीडीपी अनुपात से भाग दिया जाता है। यदि 'Y' जीडीपी का द्योतक है तथा 'G' सरकारी व्यय दर्शाता है, तब लोच होगी $\alpha = (\Delta Y/Y / \Delta G/G)$, और इसलिए गुणक $\Delta Y/\Delta G = \alpha/(G/Y)$ होगा। आंतरिक चरों में व्यय, जीडीपी और कर चर शामिल होते हैं जबकि मौद्रिक रुझान दर्शाने वाली मांग मुद्रा दर, खुला व्यापार और वैश्विक जीडीपी वृद्धि दर बाह्य चर माने जाते हैं। परिणाम नीचे दिए गए हैं:

ये परिणाम दर्शाते हैं कि संयुक्त सरकारी व्यय के पॉजिटिव आघात में जीडीपी में पॉजिटिव प्रतिक्रिया होती है। राजस्व व्यय की स्थिति में, यह प्रभाव पहले वर्ष अधिक होता है लेकिन इसके बाद आशा के अनुरूप यह कम होता चला जाता है। पूंजी परिव्यय में दीर्घावधि गुणक बड़ा होता है और जैसा कि कम प्रभाव वाले गुणक से मालूम होता है कि अल्पावधि गुणक की तुलना में दीर्घावधि गुणक में अधिक उत्पादकता होती है।

कुल व्यय का प्रभाव गुणक अधिक होता है, जबकि इसका दीर्घावधि गुणक कम लेकिन धनात्मक है। सरकारी व्यय के घटकों का राजस्व व्यय की ओर उन्मुख हो जाना इस परिणाम का कारण हो सकता है। उपर्युक्त परिणाम सरकार के व्यय घटकों का पूंजी परिव्यय की ओर मुड़कर संकट से पहले के औसत 20.9 प्रतिशत (2003-08) स्तर तक होने की संवेदनशीलता को उजागर करते हैं जिससे लंबी अवधि में वृद्धि की संभावनाओं में सुधार हो पाएगा (चार्ट)।

चार्ट 1: पूंजी परिव्यय / कुल खर्च

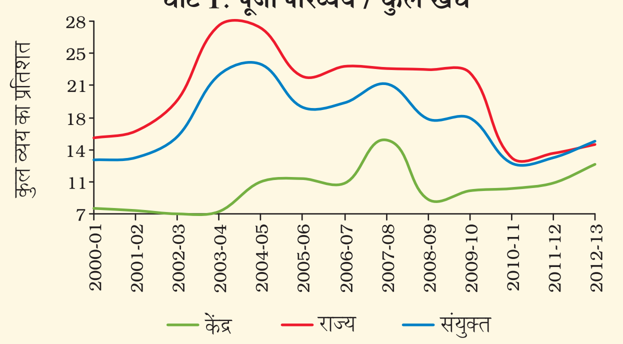

संदर्भ:

एल क्रिस्टियानो, एम. आइशबॉम बॉम और एस रेबेलो (2011), ''व्हेन इज द गवर्नमेंट स्पेंडिंग मल्टीप्लायर लार्ज?'' *जर्नल ऑफ पॉलिटिकल इकॉनॉमी,* खंड 119, नं.1, फरवरी ।

ई. इजेजकी, ई.जी. मेन्डोजा और सी.ए. वेग (2011), ''हाउ बिग (स्मॉल?) आर फिस्कल मल्टीप्लायर्स?'' *आईएमएफ वर्किंग पेपर* नं. डब्ल्यू पी/11/52, मार्च।

सी.डी रोमर और डी.रोमर (2007), ''द *मैक्रोइकॉनॉमिक इफेक्ट्स ऑफ टैक्स चेन्जेजटट*: इस्टिमेट्स बेस्ड ऑन अ न्यू मेजर ऑफ फिस्कल शॉक्स'', यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया,बर्कले, मार्च।

ए. स्पिलिम्बर्गो और अन्य (2008), ''*फिस्कल पॉलिसी फॉर द क्राइसिस*'', आईएमएफ स्टाफ पोजीशन नोट, एसपीएन/08/01, 29 दिसंबर।

[a] इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत के कुल सरकारी खर्चे में राज्य सरकार का हिस्सा काफी अधिक होता है, वीएआर अध्ययन, संयुक्त पूंजी व्यय और करों को भारत के राजकोषीय चरों के रूप में प्रयोग करता है।

II.5.11 निःसंदेह, कुछ विकासकारी उद्देश्यों के लिए सब्सिडी लाजिमी है, लेकिन ऐसी सब्सिडी जो वास्तविक हिताधिकारियों तक नहीं पहुंच पाती है या जो समष्टि-आर्थिक फंडामेंटल्स के अनुरूप नहीं हैं, उसे युक्तिसंगत बनाया जाना चाहिए। सब्सिडी पर अधिकतम सीमा लगाना और साथ ही इससे लाभान्वित होने वाले लोगों की वास्तविक पहचान करना एक सकारात्मक कदम है। इस लक्ष्य को हासिल कर लेने से कच्चे तेल और उर्वरकों की अंतरराष्ट्रीय कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव का असर घरेलू कीमतों पर हो, ऐसा रास्ता खुल पाएगा। बजट में सब्सिडी पर होनेवाले व्यय में कमी मुख्य रूप से इस कारण से हुई कि 2011-12 के मुकाबले 2012-13 में पेट्रोलियम सब्सिडी में 36 प्रतिशत की गिरावट हुई (सं. अ.) (चार्ट II.37)। 2011-12 की अंतिम तिमाही में पेट्रोलियम सब्सिडी भुगतान के प्रभाव-विस्तार के कारण और विशेषकर डीजल की नियंत्रित कीमतों के नियंत्रणमुक्त न होने की स्थिति में 2012-13 में तेल विपणन कंपनियों को अंडर-रिकवरी के वास्ते क्षतिपूर्ति का ₹400 बिलियन का प्रावधान अपर्याप्त हो सकता है।

राजकोषीय घाटे के वित्तीयन में बाजार उधार पर बढ़ती निर्भरता के मद्देनजर उपयुक्त मौद्रिक प्रबंधन की आवश्यकता होगी

II.5.12 2012-13 के राजकोषीय घाटे के वित्तीयन का पैटर्न दर्शाता है कि बाजार उधारियों पर लगातार भरोसा किया गया (जीएफडी का 56 प्रतिशत), तथापि बजट में खजाना बिलों के

चार्ट II.37: केंद्र सरकार की प्रमुख सब्सिडियां

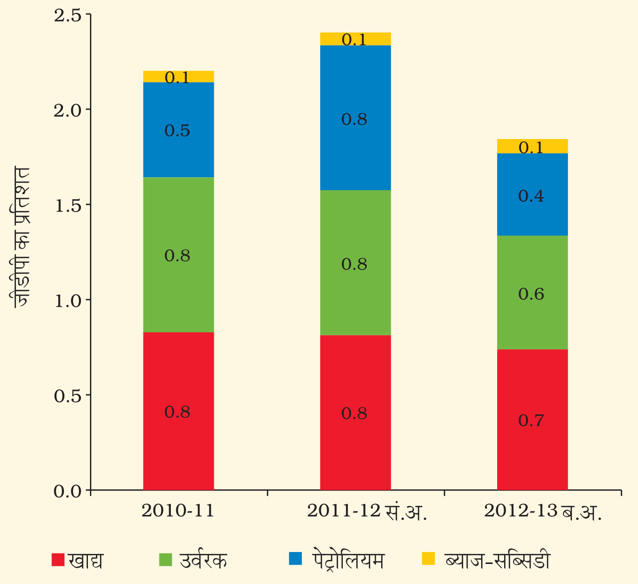

जरिए अल्पावधि वित्तीयन 2 प्रतिशत तय किया गया जो 2011-12 के 22 प्रतिशत से काफी कम है। सरकार को आशा है कि 2011-12 में लघु बचतों में निधियों में बहिर्वाह देखे जाने के बाद 2012-13 में इसमें निधियों के आगमन की संभावना है। सरकार ने 2012-13 में बाजार उधार की जैसी परिकल्पना की थी उसे उपयुक्त रूप से व्यवस्थित करना होगा ताकि निजी निवेश के लिए निधि की अनुपलब्धता टाली जा सके। यह भी गौरतलब है कि राजस्व प्राप्ति तय लक्ष्य से कम रहने के कारण बाजार से अधिक उधार लेना होगा और इसके परिणामस्वरूप मंद वृद्धि से निपटने हेतु बनाई गई मौद्रिक नीति का प्रभाव सीमित हो जाएगा।

राज्यों द्वारा बजटीय विकास खर्च तय लक्ष्य से अधिक रहे-यह उनकी अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा संकेत है

II.5.13 राज्य सरकारों की समेकित स्थिति से मालूम होता है कि 2011-12 (सं.अ.) के दौरान राजस्व अधिशेष जीडीपी का 0.1 प्रतिशत था और राजस्व खर्च में वृद्धि के कारण यह बजट अनुमान से काफी कम रहा और इसके चलते राजस्व प्राप्ति में हुई वृद्धि प्रतिसंतुलित हो गई। राजस्व प्राप्ति के तहत, कर राजस्व और केंद्र से मिलने वाले करेंट ट्रांसफर - दोनों बजट अनुमान से अधिक थे और केंद्र द्वारा राज्यों को कर संबंधी अधिक अधिकार दिए जाने के कारण करेंट ट्रांसफर अधिक हुए। मंद आर्थिक वृद्धि के बावजूद, खुद के कर राजस्व में हुई वृद्धि बजट में अनुमानित कर उछाल से बेहतर थी और इस वृद्धि में सबसे बड़ा हिस्सा पेट्रोलियम उत्पादों पर हुए अधिक वैट/बिक्री कर वसुली का था। व्यय पक्ष में, यह वृद्धि विकास व्यय के कारण हुई। तथापि, 20 राज्यों में 2011-12 (सं. अ.) के दौरान राजस्व अधिशेष की स्थिति देखी गयी जिसमें से 9 राज्यों का अधिशेष वर्ष के बजट अनुमान से अधिक था।

II.5.14 2011-12 के दौरान (सं.अ.) राज्यों का समेकित जीएफडी-जीडीपी अनुपात बजट अनुमान से इसलिए अधिक था क्योंकि राजस्व अधिशेष में गिरावट हुई थी, जबकि पूंजी परिव्यय-जीडीपी अनुपात बजटीय स्तर से कम था (परिशिष्ट सारणी 16)। राज्य-वार आंकड़े दर्शाते हैं कि जीएफडी-जीएसडीपी अनुपात छः राज्यों में बजट अनुमान से अधिक और सात राज्यों में तेरहवें वित्त आयोग के लक्ष्य से अधिक था। हालांकि विकास व्यय बजटीय स्तर से अधिक बने रहे जिसमें सामाजिक क्षेत्र पर होने वाला व्यय शामिल है।

2012-13 में राज्यों में वित्तीय सुदृढ़ीकरण की संभावना है लेकिन जीडीपी की तुलना में विकास और सामाजिक क्षेत्र व्यय अनुपात बजट अनुमान से कम रहने की संभावना है

II.5.15 राज्यों के महत्त्वपूर्ण घाटा संकेतक 2012-13 में राज्यों की स्थिति में सुधार दर्शाते हैं। राजस्व प्राप्ति में वृद्धि के साथ ही राजस्व व्यय में कमी के कारण समेकित राजस्व अधिशेष में वृद्धि होने का अनुमान है। 2012-13 के दौरान खुद के राजस्व और केंद्र से होने वाले करेंट ट्रांसफर - दोनों ही में वृद्धि होने का अनुमान है। राजस्व अधिशेष से न केवल 2012-13 में बढ़े हुए पूंजी परिव्यय के लिए संसाधन उपलब्ध होने की आशा है बल्कि इसके चलते जीएफडी-जीडीपी अनुपात में कमी होने की भी गुंजाइश है। राज्य-वार आंकड़े इस अनुमान की ओर संकेत करते हैं कि 28 में से 26 राज्य तेरहवें वित्त आयोग द्वारा जीएफडी-जीएसडीपी अनुपात के तय लक्ष्य को प्राप्त लेंगे। राज्यों के लिए सोचे गए व्यय पैटर्न यह बताते हैं कि 2012-13 में एक ओर प्रतिबद्ध व्यय-जीडीपी अनुपात (जिसमें ब्याज भुगतान, प्रशासनिक सेवाएं और पेंशन शामिल हैं) में वृद्धि होने, वहीं दूसरी ओर जीडीपी की तुलना में विकास व्यय और सामाजिक क्षेत्र व्यय अनुपात में कमी होने का अनुमान है। वित्तीय सुदृढ़ीकरण के एजेंडा को और आगे बढ़ाते हुए यह आवश्यक है कि प्रतिबद्ध व्यय को कम करने के लिए जरूरी कदम उठाए जाएं ताकि विकासकारी, सामाजिक और पूंजी व्यय को अधिक संसाधन उपलब्ध हो पाए।

राज्य विद्युत वितरण उपयोगिताओं से राज्यों के वित्त पर दबाव बढ़ेगा

II.5.16 राज्यों की विद्युत वितरण उपयोगिताओं की वित्तीय हानि में भारी वृद्धि उनके लिए चिंता का कारण रही है और इसके चलते राज्य सरकारों के वित्त पर बोझ बढ़ेगा। तदनुसार, राज्य विद्युत वितरण उपयोगिताओं की कार्यक्षमता और व्यवहार्यता में सुधार लाने के लिए संरचनागत सुधार की आवश्यकता है और इसके चलते राज्यों के वित्त पर भी असर पड़ेगा। वैसे तो कई राज्य सरकारों के राजस्व खाते में सरप्लस दिखाई दे रहा है, लेकिन इसे राज्यों की विद्युत वितरण उपयोगिताओं में होने वाली भारी हानि के संदर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है। राज्य विद्युत वितरण उपयोगिताओं को सब्सिडी, अनुदान, उधार और इक्विटी निवेश के जरिए दी जाने वाली बजटीय सहायता के अलावा इन्हें वित्तीय संस्थाओं से मिलने वाले ऋणों के लिए गारंटी भी देते हैं। यद्यपि ये गारंटियाँ आकस्मिक देयताओं की तरह होती हैं और इनसे राज्यों के वित्त पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन यदि ऋण चुकौती में कोई चूक होती है तो राज्य सरकार द्वारा दी गई गारंटी लागू हो सकती है। इससे चलते राज्य सरकार का वित्त बुरी तरह से प्रभावित हो जाएगा (बॉक्स II.17)। राज्यों की विद्युत वितरण उपयोगिताओं के वित्त में स्थिरता लाने के लिए विद्युत टैरिफ को युक्तिसंगत बनाना और वितरण में होने वाली हानियों को कम करना महत्त्वपूर्ण है।

बॉक्स II.17
राज्यों की आकस्मिक देयताओं का राजकोषीय प्रभाव

राज्यों की राजकोषीय स्थिति को महत्त्वपूर्ण घाटा संकेतकों और कर्ज-जीडीपी अनुपात के संदर्भ में देखने से मालूम होता है कि हाल के वर्षों में उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। लेकिन यदि राज्यों के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की देयताएं और राज्यों द्वारा उनको दी गई सहायता से होने वाली देयताओं पर विचार किया जाए तो यह स्थिति उतनी उत्साहवर्धक नहीं होगी जितनी दिखाई देती है। अध्ययनों में ऐसे उदाहरण उल्लिखित हैं जिनमें यह बताया गया है कि सरकारी और निजी - दोनों क्षेत्रों में वित्तीय तथा गैर-वित्तीय संस्थाओं को बेलआउट दिए जाने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की समग्र वित्तीय स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। यद्यपि राज्यों के कर्ज दायित्व में आकस्मिक देयताओं का भाग नहीं होता है, तथापि उधार लेने वाली संस्थाओं द्वारा चूक करने की स्थिति में, राज्यों को चूक करने वाली इस संस्थाओं के कर्ज की चुकौती का दायित्व पूरा करना होता है। इसलिए राज्य सरकारों के लोक वित्त के विश्लेषण में आकस्मिक देयताओं का अहम् महत्त्व है।

रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकार की गारंटियों से जुड़े राजकोषीय जोखिम का मूल्यांकन करने के लिए 2001 में एक का कार्यदल का गठन किया। इस दल ने पाया कि राज्यों की सही राजकोषीय स्थिति का विश्लेषण करने में एक बड़ी अड़चन यह है कि राज्य सरकारों के बजट में राज्यों द्वारा दी गई गारंटियों के डेटा के संबंध में एक सुसंगत और मानक रिपोर्टिंग पैटर्न नहीं है, इसलिए दल ने बजट में गारंटी से जुड़े आंकड़ों की नियमित रिपोर्टिंग के लिए एक एक-समान फार्मेट की सिफारिश की। रिज़र्व बैंक में 2003 में ''राज्य सरकार गारंटीकृत अग्रिमों और बांडों से संबंधित जानकारी'' पर गठित एक आंतरिक कार्यदल ने जोर देकर कहा कि बाजार अनुशासन को प्रोत्साहित करने और राज्य सरकार द्वारा गारंटीकृत परियोजनाओं की उचित रेटिंग के लिए सूचना प्रकटीकरण में पारदर्शिता का होना काफी मायने रखता है। राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय पारदर्शिता बरतने में आयी वृद्धि, विशेषकर अपने-अपने यहां राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम के अधिनियमन के बाद से 28 में से 20 राज्य अपने बजट दस्तावेजों (राजकोषीय जवाबदेही विधान के तहत विवरण) में बकाया गारंटी जैसी आकस्मिक देयताओं से जुड़ी सूचनाएं उपलब्ध करा रहे हैं। तथापि, केवल 14 राज्यों ने इन आंकड़ों को निर्धारित फार्मेट में उपलब्ध कराया है जिनमें से 9 राज्य बकाया जोखिम-भारित गारंटियों से जुड़ी सूचनाएं उपलब्ध कराते हैं।

जीडीपी की तुलना में राज्य सरकारों की बकाया समेकित गारंटियों का अनुपात 1990-91 के 6.1 प्रतिशत से बढ़कर 2003-04 में 8.0 प्रतिशत हो गया,

(जारी....)

लेकिन इसके बाद मार्च 2010 अंत में गिरकर 2.8 प्रतिशत हो गया। नवीनतम उपलब्ध जानकारी के अनुसार 14 राज्यों की बकाया गारंटियां मार्च 2011 के अंत में 1.3 ट्रिलियन रुपए हैं। राजकोषीय स्थिति पर गारंटियो के होनेवाले प्रभाव के मद्देनजर कई राज्यों ने गारंटियों पर उच्चतम सीमा (वैधानिक या प्रशासनिक) लगाने की दिशा में पहल की है। गारंटियों से जुड़े राजकोषीय जोखिमों को नियंत्रित करने के 10 राज्यों ने लिए गारंटी मोचन निधि स्थापित की है।

यद्यपि राज्य सरकारों द्वारा दी गई कुल बकाया गारंटियों की संख्या में कमी हुई है, लेकिन राज्यों द्वारा वित्तीय दृष्टि से रुग्ण एसपीएसयू को दी जाने वाली गारंटियों की भागीदारी में बढ़ोतरी चिंता का विषय बनी हुई है। इसके अलावा, यदि राज्यों के विद्युत उपयोगिता उपक्रमों सहित एसपीएसयू को दिए गए चुकौती आश्वासन पत्रों को ध्यान में लिया जाए तो यह जान पड़ता है कि राज्य सरकारों की आकस्मिक देयताएं, जैसा कि उनके बजट दस्तावेजों / वित्त खातों से मालूम होता है, उससे कहीं अधिक होंगी।

राज्य सरकार के स्तर पर आकस्मिक देयताओं का एक और रूप सार्वजनिक निजी साझेदारी (पीपीपी) से संबंधित है। तेरहवें वित्त आयोग ने उल्लेख किया कि पीपीपी परियोजनाओं में शामिल सार्वजनिक संस्थाओं के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दायित्व मौजूद हैं। एक ओर, एकाधिक वर्षों में निर्धारित वार्षिकी भुगतान के रूप में मौजूद प्रत्यक्ष आकस्मिक देयताओं को स्पष्ट किया जाना चाहिए, वहीं दूसरी ओर अप्रत्यक्ष आकस्मिक देयताएं वे दायित्व हैं जिसके तहत निजी क्षेत्र के साझेदार को संरचना में परिवर्तन, दायित्व का उल्लंघन और करार के पहले खत्म हो जाने जैसी आकस्मिक स्थितियों में क्षतिपूर्ति देनी हो सकती है और इनकी मात्रा तय करना मुश्किल है। तेरहवें वित्त आयोग द्वार केंद्र सरकार के लिए की गई सिफारिश की ही तर्ज पर राज्यों के लिए भी आवश्यक है कि वे मध्यम अवधि के अपने राजकोषीय नीति विवरण में पीपीपी परियोजनाओं से जुड़े व्यय दायित्व की मात्रा तय करें, ये इसलिए भी जरूरी है क्योंकि बड़ी संख्या में अधिकांश राज्य परियोजना कार्यान्वयन के लिए पीपीपी तरीके का सहारा ले रहे हैं। कर्नाटक और तमिलनाडु की सरकारों ने 2012-13 के अपने बजट दस्तावेज में 'सार्वजनिक निजी साझेदारी में देयताएं' पर एक विवरण शामिल किया है।

संदर्भः

ए. सेबोट्राय (2008), ''कॉन्टीजेंट लायबिलिटीजः ईसूज एंड प्रैक्टिस', *अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वर्किंग पेपर*, डब्ल्यूपी/08/245, अक्तूबर।

अंततराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2007), मैन्यूअल ऑन फिस्कल ट्रांसपैरेंसी।

भारतीय रिज़र्व बैंक (2002), ''राज्य सरकारों की गारंटियों से जुड़े राजकोषीय जोखिम का मूल्यांकन करने हेतु गठित कार्य-दल की रिपोर्ट,'' जुलाई।

II.5.17 2011-12 के दौरान केंद्र सरकार के घाटा संकेतक राजकोषीय सुदृढ़ीकरण के लिए सोची गई राह के अनुरूप नहीं रहे और अर्थव्यवस्था में मंदी इसके लिए आंशिक रूप से जिम्मेदार थी जिसके चलते इनका राजस्व प्रभावित हुआ। कच्चे तेल की ऊंची कीमतों के कारण 2011-12 में सब्सिडी में भारी वृद्धि हुई जिससे सरकार का घाटा आगे और प्रभावित हुआ। एक विश्वसनीय राजकोषीय सुदृढ़ीकरण रणनीति के लिए आवश्यक है कि सब्सिडी को नियंत्रित करने के लिए कदम उठाए जाएं। उठाए जाने वाले इन कदमों में पेट्रोलियम उत्पादों तथा उर्ववरकों के नियंत्रित मूल्यों को नियंत्रण-मुक्त करना, सरकारी व्यय को पूंजीगत व्यय की ओर मोड़ना और समग्र कार्यक्षमता में सुधार के लिए कर सुधार प्रक्रिया को तेज करना शामिल है। घाटे को नियंत्रित करना बाह्य स्थिरता के लिए आवश्यक है और साथ-ही-साथ मौद्रिक नीति की प्रभावोत्पादकता में सुधार लाने के लिए भी जरूरी है।

II. 6 बाह्य क्षेत्र

2011-12 *में बाह्य क्षेत्र में स्थिति के बिगड़ने से चिंता हुई*

II.6.1 वर्ष 2011-12, विशेषत: इसके उत्तरार्ध में, निम्नलिखित बातें प्रमुखता से देखी गईं: बढ़ता चालू खाता घाटा(सीएडी), घटा हुआ इक्विटी प्रवाह, घटता विदेशी मुद्रा भंडार, बढ़ता हुआ बाह्य ऋण और अंतरराष्ट्रीय निवेश की बदतर होती स्थिति। ये संकेत कह रहे हैं कि बाह्य क्षेत्र की आघात सहनीयता कमज़ोर पड़ रही है और इस प्रकार नीति निर्माताओं के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

II.6.2 भारत का भुगतान संतुलन 2011-12 की तीसरी तिमाही में उल्लेखनीय रूप से बिगड़ने के बाद चौथी तिमाही में और दबाव में आ गया जिसने अब तक देखे गए इस मौसमी प्रवृत्ति को झुठला दिया कि अंतिम तिमाही में चालू खाता घाटे (सीएडी) में सामान्यत: कमी आती है। आयात वृद्धि की तुलना में निर्यात वृद्धि के तेजी से घटने से, व्यापार घाटा बढ़ा। इसके साथ निवल सेवा निर्यात की वृद्धि में तीव्र ह्रास के संयुक्त प्रभाव ने सीएडी-जीडीपी अनुपात को चौथी तिमाही में और बढ़ाकर 4.5 प्रतिशत कर दिया, जिससे पूरे वर्ष का अनुपात 4.2 प्रतिशत की ऊँचाई पर पहुँच गया। यह चालू खाता घाटे के कायम रखे जाने वाले स्तर से काफी अधिक है जिसके सबंध में, मंथर वृद्धि को देखते हुए, जीडीपी के लगभग 2.5 प्रतिशत पर होने का आकलन है। 2011-12 की चौथी तिमाही में विदेशी मुद्रा भंडार की निकासी में भी यह बात दिखाई पड़ी क्योंकि पूँजी व वित्त खाते के अंतर्गत आनेवाले निवल प्रवाह, चालू खाता घाटे (सीएडी) के वित्तपोषण के लिए पर्याप्त नहीं थे।

II.6.3 आगे, पहले के बढ़े हुए दामों के मुकाबले वैश्विक तेल की कीमतों में आई कमी और स्वर्ण आयातों में कुछ नरमी यदि कायम रही, तो चालू खाता घाटे पर इनका सकारात्मक प्रभाव पड़ने की आशा है। इन कारकों के बावजूद, इसकी संभावना है कि चालू खाता घाटे की अधिकता तनाव का कारण बने, विशेषत: जब आने वाला पूँजीगत प्रवाह कम बना रहे। अमेरिका, यूरो क्षेत्र व चीन समेत वैश्विक विकास की कमजोर संभावनाओं, वैश्विक व्यापार में सुस्ती और सरकारी ऋण संकट से जन्म ले रही जोखिम से बचने की नई

प्रवृत्ति भारत के भुगतान संतुलन स्थिति को होने वाले खतरे के कारण हैं।

II.6.4 2011- 12 में सामने आई बाह्य क्षेत्र की कमज़ोरी के पीछे घरेलू व वैश्विक दोनों प्रकार के कारण थे। अमेरिकी डॉलर, सभी प्रमुख मुद्राओं की तुलना में मज़बूत हुआ, सिवाय येन के। परिणामत: भारतीय रुपया और साथ ही कई उभरते बाज़ारों की मुद्राएं भी काफी दबाव में आ गईं। वैश्विक पण्य, विशेषत: तेल व सोने की कीमतें चढ़ीं। भारत में इन वस्तुओं की माँग की प्रकृति तुलनात्मक रूप से लोचविहीन होने के कारण चालू खाता घाटा काफी तेजी से बढ़ा। साथ ही, बढ़ते राजकोषीय घाटे से निजी खपत में उछाल आया जिसने आयात को बढ़ाने में योगदान दिया। जहाँ निवेश का माहौल बदतर हुआ वहीं बचत के भी कमज़ोर हो जाने के चलते सीएडी बढ़ा ही रहा। इन सभी कारकों के मिले-जुले प्रभाव के कारण बढ़ते सीएडी का वित्तपोषण अधिक मुश्किल हो गया। इसके चलते रुपया विनिमय दर भी दबाव में आ गया। इसके अलावा, देशी मुद्रास्फ़ीति के अधिक होने के चलते मुद्रास्फ़ीतीय अंतर पैदा हुआ जिसने मुद्रा को कमज़ोर करने में भी योगदान दिया।

II.6.5 2011-12 में कमज़ोर वैश्विक आर्थिक व वित्तीय परिस्थितियों ने भारत के बाह्य क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। वाणिज्य वस्तुओं के निर्यात में मामूली वृद्धि के साथ आयात में मज़बूत वृद्धि के संयुक्त प्रभाव ने व्यापार घाटे में जीडीपी के 3 प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी करते हुए इसे 2011-12 में जीडीपी के 10.0 प्रतिशत तक पहुँचा दिया जो कि अब तक का सर्वाधिक है। इसके साथ अदृश्य प्राप्तियों में सुस्त बढ़ोतरी के कारण सीएडी जीडीपी के 4 प्रतिशत के पार चला गया। सीएडी का यह स्तर 1966-67 के 3.1 प्रतिशत के सीएडी/डीजीपी अनुपात और 1990-91 के 3.0 प्रतिशत से काफी अधिक रहा; जबकि उक्त दो मौकों पर देश को भुगतान संतुलन के संकट का सामना करना पड़ा था। अंतरराष्ट्रीय पूँजी बाज़ारों में बेहतर पहुँच व विनिमय दर के लचीलेपन के कारण इस बार हमारी अर्थव्यवस्था बाह्य क्षेत्र के झटकों को बिना किसी भुगतान संकट के झेल गई। अटकली हमले (स्पेक्यूलेटिव अटैक्स) और संभावित पूँजी पलायन के प्रति बीमा के रूप में, उच्च विदेशी मुद्रा भंडार मौजूद था और भंडार में हुई क्षति को विनिमय दर समायोजन एक्सचेंज रेट एडजस्टमेंट) से संभाला गया ।

II.6.6 वैश्विक वित्तीय अनिश्चितता के चलते जोखिम प्रवणता में कमी आई और 2011-12 की तीसरी तिमाही से उभरती व विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (ईडीईज़) की ओर जाने वाले पूँजी प्रवाह में अस्थिरता व कमी आई। पूँजी प्रवाहों में कमी आने के कारण चालू खाता घाटे (सीएडी) को अंशतः विदेशी मुद्रा भंडार के आहरण से वित्तपोषित करना पड़ा। वाणिज्यिक उधारियों में उल्लेखनीय वृद्धि के चलते बाह्य ऋण में हुई बढ़ोतरी, निर्यात ऋणों तथा अल्पावधि ऋण के कारण 2011-12 में बाह्य क्षेत्र की संवेदनशीलता दर्शाने वाले संकेतकों ने और बदतर संभावनाएं व्यक्त कीं।

निर्यात में मंदी और आयात की स्थिति असहज बनी रहने से व्यापार में भारत का प्रदर्शन कमज़ोर रहा

II.6.7 विकसित अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि की स्थिति के सुस्त बने रहने से 2011-12 के उत्तरार्ध में उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं से निर्यात की बाहरी माँग कमज़ोर पड़ने लगी। इससे संबंधित नरमी भारतीय निर्यात वृद्धि में भी कमी के रूप में दिखाई पड़ी (चार्ट II.38, परिशिष्ट सारणी 17)। इसके प्रभावों ने ईएमई के व्यापार को संकुचित कर दिया और व्यापार में विविधता से होने वाले लाभों को भी सीमित कर दिया। वर्ष की पहली छमाही में 41.0 प्रतिशत की औसत मासिक वृद्धि दर्ज करने के बाद, निर्यात अपनी गति नहीं बनाए रख सका और 2011-12 की दूसरी छमाही में लगभग 7.6 प्रतिशत की गति से बढ़ पाया। 2011-12 में दर्ज 21.3 प्रतिशत की समग्र निर्यात वृद्धि दर, 2010-11 की लगभग आधी थी। इसके विपरीत, 2011-12 में आयात वृद्धि अधिक रही जो मुख्यत: पीओएल तथा सोना और चाँदी के आयात के चलते थी ।

चार्ट II.38: निर्यात और आयात

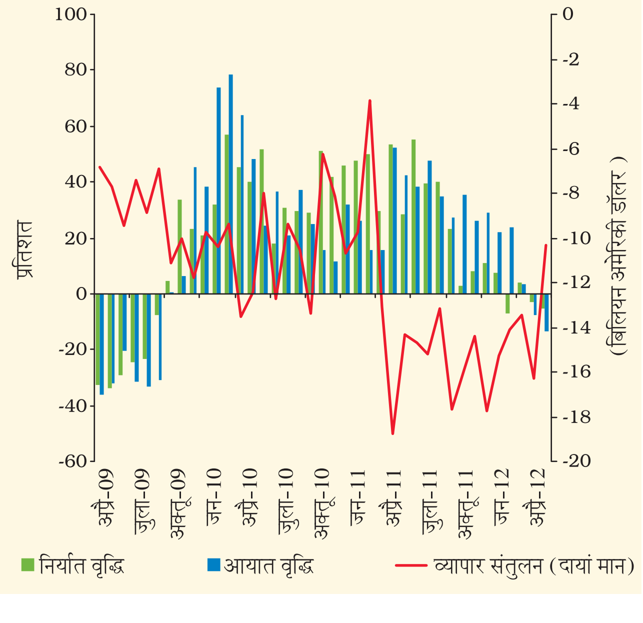

II.6.8 कच्चे तेल तथा सोना व चाँदी की अंतरराष्ट्रीय कीमतों के तेजी से बढ़ने के बावजूद, इनके आयात 2011-12 में उल्लेखनीय रूप से बढ़े और व्यापारिक वस्तुओं (मर्केंडाइज़) के आयात में इनका योगदान 43.1 प्रतिशत का रहा (बॉक्स

बॉक्स II.18
भारत में स्वर्ण की माँग का निर्धारक

विश्व स्वर्ण परिषद (वर्ल्ड गोल्ड काउन्सिल) की ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक सोने की खपत में वर्ष-दर-वर्ष 17 प्रतिशत की कमी आई है, परंतु सर्वाधिक खपत अभी भी भारत में है और चीन का स्थान दूसरा है। डीजीसीआई एंड एस के आँकड़ों में 2011-12 में भारत के स्वर्ण आयात के 39 प्रतिशत बढ़े होने का आकलन है। विश्व स्वर्ण परिषद (वर्ल्ड गोल्ड काउंसिल) के अनुसार, 2011-12 में विश्व में स्वर्ण की कुल माँग का एक चौथाई हिस्सा भारत द्वारा आयात किया गया है। पिछले दशक में भारत में औसतन सालाना 29 प्रतिशत की वृद्धि स्वर्ण खपत में और 18 प्रतिशत की वृद्धि सोने की कीमत में देखी गई है तथा इस प्रकार इसने देश की वास्तविक जीडीपी और मुद्रास्फीति को पीछे छोड़ दिया है। 2008-09 से 2011-12 के दौरान स्वर्ण आयात की मात्रा औसतन 12 प्रतिशत बढ़ी जबकि 2005-06 से 2007-08 में इसमें 5 प्रतिशत की गिरावट आई थी।

बड़ी मात्रा में सोने के आयात से विदेशी मुद्रा की उपलब्धता दूसरे आयातों (यथा कच्चे माल, मध्यवर्ती-वस्तुएं और पूँजीगत उपस्कर आदि) के लिए घट जाती है जो कि उत्पादकता के लिहाज से अधिक उपयोगी हो सकते हैं (वैद्यनाथन,1999)।

हाल की अवधि में सोने के दाम बढ़े हैं फिर भी मात्रा व मूल्य दोनों प्रकार से स्वर्ण आयात तेजी से ऊपर गया है (चार्ट ए)। घरेलू खपत/ निवेश तथा आभूषण के रूप में स्वर्ण का पुनर्नियात भारत में स्वर्ण के आयात के कारण हैं। निर्यात वाले कुल रत्नों व आभूषणों में स्वर्ण आयात की मात्रा के पिछले ढर्रे के आधार पर, आकलन है कि 2011-12 में स्वर्ण पुनर्नियात लगभग 7 बिलियन अमरिकी $ (डॉलर) का था।

भारत में स्वर्ण की माँग के मज़बूत बने रहने का कारण है कि इसे अच्छा रिटर्न देने वाले एक सुरक्षित निवेश आस्ति के रूप में देखा जाता है जो साथ ही साथ आभूषण की माँग पूरा करने वाली उपभोग आस्ति (कन्ज्यम्पशन एसेट) का भी काम करती है। बैंक डिपॉजिट्स और स्टॉक मार्केट सरीखे निवेश के अन्य माध्यमों के मुकाबले, सोने में निवेश पर वास्तविक रिटर्न रेट का अधिक होना भी देश के निवासियों द्वारा स्वर्ण निवेश में वृद्धि का कारण प्रतीत होता है। पुनश्च, बैंकों द्वारा लोगों के बीच स्वर्ण को निवेश आस्ति के रूप में बढ़ावा देने की विभिन्न योजनाओं के चलते सोने की डिमांड और बढ़ रही है। पिछले 11 वर्षों में, स्वर्ण ने 18.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष का चक्रवृद्धि वार्षिक रिटर्न दिया है।

गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसीज) ने भी स्वर्ण में निवेश को कई प्रकार से बढ़ावा दिया है। एनबीएफसीज की ओर से स्वर्ण ऋण आसानी से उपलब्ध कराए जाने के कारण सोने की माँग बढ़ी। स्वर्ण ऋणों की माँग के ट्रेंड एवं स्वर्ण आयात पर इसके प्रभावों की परीक्षा करने के लिए रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 2012 में एनबीएफसीज़ द्वारा स्वर्ण ऋण पर कार्य-दल (वर्किंग ग्रुप ऑन गोल्ड लोन्स बाइ एनबीएफसीज़) का गठन किया। हाल की अवधि में देखा गया स्वर्ण आयात का ऊँचा स्तर एक बड़ी समस्या बन गया है, विशेषकर समग्र रूप में बाह्य क्षेत्र की स्थिति के बिगड़ने की पृष्ठभूमि में। स्वर्ण आयातों की कीमतों में हाल की लोचहीन प्रकृति से व्यापार संतुलन व सीएडी पर काफी दबाव पड़ा है। यदि तेल व स्वर्ण आयातों को हटाकर व्यापार संतुलन को देखें तो, पिछले चार वर्षों के व्यापार घाटे (ट्रेड डेफ़िसिट) में उल्लेखनीय कमी आती दिखाई देगी (चार्ट बी)। पुनश्च, घरेलू/परिवारों के (हाउसहोल्ड) वित्तीय बचत का रुख स्वर्ण निवेश की ओर हो जाने से हाल के वर्षों में सावधि जमा राशियों की वृद्धि (2006-07 से 2008-09 में 23.1 प्रतिशत की तुलना में 2009-10 से 2011-12 में 16.7) पर भी असर पड़ा होगा। चूँकि स्वर्ण में किए गए ये निवेश पूँजी निर्माण में योगदान नहीं करते, इसलिए यह कहा जा सकता है कि समग्र निवेश व आर्थिक विकास पर भी इसका असर पड़ने की संभावना है।

स्वर्ण की माँग की संवेदनशीलता पर विधिवत् अध्ययन बहुत कम है। शर्मा आदि विद्वानों ने (1992) स्वर्ण के मूल्य, ग्रामीण अधिशेष (सरप्लस), ग्रामीण आय वितरण, अलेखित (अनएकाउंटेड) आय/धन मुख्यत: जो सेवा क्षेत्र में पैदा होता है, वैकल्पिक फाइनैंसिंग एसेट्स पर रिटर्न रेट तथा भारत में स्वर्ण की माँग को प्रभावित करने वाले सामान्य स्तर की पहचान की। वैद्यनाथन (1999) ने देखा कि शेयर कीमतों एवं अंतरराष्ट्रीय स्वर्ण कीमतों की तुलना में स्वर्ण का मूल्य, स्वर्ण आयात का एक प्रमुख निर्धारक रहा है।

1998-2012 की अवधि के वार्षिक आँकड़ों पर आधारित एक आनुभविक विश्लेषण बताता है कि वास्तविक प्रति व्यक्ति आय वृद्धि और मुद्रास्फ़ीति भारत में स्वर्ण आयात के प्रधान निर्धारक हैं। डब्ल्यूपीआई-मुद्रास्फ़ीति का

चार्ट ए: स्वर्ण की कीमतों की तुलना में स्वर्ण आयातों में उतार-चढ़ाव

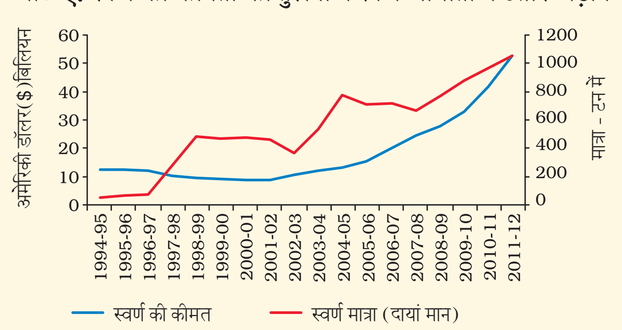

चार्ट बी: भारत का व्यापारिक वस्तु (मर्केंडाइज़) व्यापार

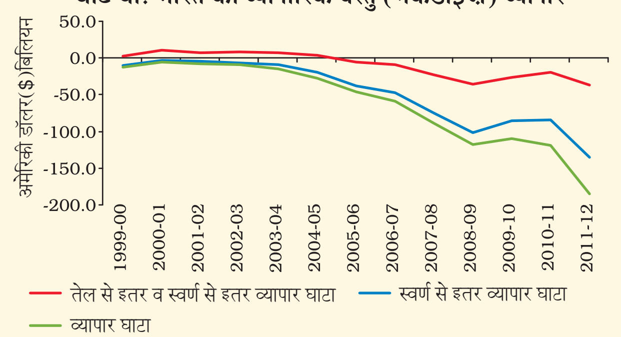

(जारी...)

सकारात्मक एवं सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण कोएफिसिएंट संभवतः यह बताता है कि स्वर्ण का उपयोग मुद्रास्फ़ीति के प्रति हेज के रूप में भी किया गया होगा। रिग्रेसन के परिणाम, मूल्य-मात्रा माँग के नकारात्मक संबंध का समर्थन नहीं करते, क्योंकि परंपरागत स्तरों पर स्वर्ण की कीमतों के कोएफिसिएंट सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं थे। तथापि, यह परिणाम चार्ट-ए द्वारा बताए गए ट्रेंड के अनुसार है। यह संभव है कि समष्टि आर्थिक अनिश्चितताओं को देखते हुए, 2007-08 के बाद स्वर्ण की माँग ऊँची कीमतों के बावजूद बढ़ी, विशेषतः इसलिए कि खुदरा निवेशकर्ता स्वर्ण में निवेश को सुरक्षित मानते हैं।

स्वर्ण का आयात रोकने के लिए हाल में कई नीतिगत कदम उठाए गए हैं। मानक स्वर्ण (स्टैंडर्ड गोल्ड) आयात पर मूलभूत (बेसिक) कस्टम ड्यूटी को 2 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया तथा गैर-मानक स्वर्ण (नॉन-स्टैंडर्ड गोल्ड) पर 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत। इसी प्रकार, स्वर्ण ऋणों में एनबीएफसी के तेजी से बढ़ते एक्सपोज़र को समझते हुए रिज़र्व बैंक ने विवेक-सम्मत (प्रूडेंशियल) कदम उठाए जिसके तहत एनबीएफसी को कहा गया है कि स्वर्ण आभूषण के संपार्श्विक (कोलैटरल) पर दिए गए ऋणों के लिए ऋण व मूल्य के अनुपात को 60 प्रतिशत से अधिक न होने दिया जाए तथा अपने बैलेंस शीट में अपने कुल आस्तियों की तुलना में ऐसे ऋणों का प्रतिशत बताया जाए।

संदर्भ :

शर्मा, ए. ए. वासुदेवन, के. सभापति और महुआ रॉय (1992), "गोल्ड मोबिलाइजेशन एज़एन इंस्ट्रुमेंट ऑफ़ एक्सटर्नल एडजस्टमेंट", *डीआरजी स्टडी नं.3*, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, अप्रैल।

वैद्यनाथन,ए (1999), "कंज्यंप्शन ऑफ गोल्ड इन इंडिया", *इकनॉमिक एंड पोलिटिकल विक्ली*, फरवरी।

वर्ल्ड गोल्ड काउन्सिल (2011), क्वार्टरली गोल्ड डिमान्ड ट्रेंड्स (http:www.gold.org पर उपलब्ध).

II.18)। निवल पीओएल आयात की मात्रा में 2003-07 की अपेक्षा 2008-12 में 35 प्रतिशत की वृद्धि में अर्थव्यवस्था में तेल की प्रधानता (2003-07 में जीडीपी के 4.7 प्रतिशत की तुलना में 2012 में 7.0 प्रतिशत) दिखाई देती है। 2012 में तेल से इतर व स्वर्ण से इतर आयात की वृद्धि में कमी का कारण आर्थिक मंदी और 2011-12 की दूसरी छमाही में रुपये के मूल्यह्रास का प्रभाव हो सकता है। वैश्विक विकास की कमजोर संभावनाओं ने भी 2011-12 में शुरुआत से ही निर्यात संबंधी वस्तुओं के आयात को प्रभावित किया। निर्यात संबंधी वस्तुओं के आयात पर, मोती और मूल्यवान/अर्ध-मूल्यवान पत्थरों के आयात में कमी तथा रसायनों (केमिकल्स) के आयात में घटती वृद्धि का, मुख्य प्रभाव पड़ा। तथापि, 2011-12 में थोक वस्तुओं और पूँजीगत वस्तुओं के आयात की वृद्धि दर में बढ़ोतरी हुई। पूँजीगत वस्तुओं के घरेलू उत्पादन में 2011-12 में 4.0 प्रतिशत की गिरावट देखी गई और ऐसा प्रतीत होता है कि पूँजीगत वस्तुओं का आयात इसका स्थान ले रहा है।

II.6.9 2012-13 में निर्यात अब तक (अप्रैल-जुलाई) 5.1 प्रतिशत की कमी दर्ज करते हुए 97.6 बिलियन यूएएस $ पर आ गया है जबकि पिछले वर्ष तत्संबंधी अवधि में यह 102.8 बिलियन यूएएस $ था जो कि यूरो क्षेत्र में देर तक कायम मंदी और अमेरिका व अन्य उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में विकास में आई कमी को दर्शाता है। आकलन है कि हस्तशिल्प, वस्त्र तथा रत्न व आभूषण जैसे श्रम-प्रधान क्षेत्रों पर इस मंदी की बड़ी जबर्दस्त मार पड़ी। इसी अवधि में, गत वर्ष की तुलनीय अवधि के 163.8 बिलियन यूएएस $ की तुलना में, 6.5 प्रतिशत की गिरावट दर्ज करते हुए आयात 153.2 बिलियन यूएएस $ पर चला आया जिसकी वज़ह घरेलू माँग में कमी और निर्यात में कमी थी क्योंकि कुछ आयातित सामग्रियों का उपयोग निर्यात संबंधी उद्योगों में इनपुट के रूप में होता है। जून 2012 में सरकार द्वारा ब्याज संसाहयकी (इंटरेस्ट सबभेंशन) और क्षेत्र विशेष को दिए गए प्रोत्साहनों के रूप में घोषित कदमों का निर्यात के प्रदर्शन पर असर दिखना अभी शेष है।

यूरो क्षेत्र में भारत का व्यापार एक्सपोज़र सीमित है

II.6.10 भारत के निर्यात का 3.5 प्रतिशत से कुछ कम तथा आयात का 1.7 प्रतिशत यूरो क्षेत्र के पाँच संकटग्रस्त देशों - ग्रीस, पुर्तगाल, स्पेन, आयरलैंड और इटली- को मिलाकर होता है। तथापि, 2011-12 की तीसरी तिमाही के वैश्विक घटनाक्रम ने यूरो क्षेत्र के संकट के बढ़ने के भय को पुनर्जीवित कर दिया। भारत व अन्य उभरती हुई और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (ईडीईज़) में इसका प्रभाव स्पष्ट था, हालांकि इसका स्वरूप व्यापारिक व वित्तीय संबंधों व यूरो क्षेत्र के बैंकों के एक्सपोज़रों के अनुसार विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में अलग-अलग था। निर्यात में विविधता लाने के सरकार के प्रयासों के फलस्वरूप भारत के कुल निर्यात में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का हिस्सा हाल में क्रमश: बढ़ा है । तथापि, विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मंथर चाल का प्रभाव जैसे-जैसे अन्य ईडीईज़ पर क्रमश: पड़ना शुरू हुआ, निर्यात में विविधता के प्रयासों के नतीजे विगत वर्षों की तरह नहीं रहे। गंतव्य-वार कहा जाए तो, ओपेक अर्थव्यवस्थाओं, यूरोपीय संघ और अन्य विकासशील अर्थव्यवस्थाओं, खास तौर से अफ्रीका व लैटिन अमेरिकी अर्थव्यवस्थाओं के नए उभरते गंतव्यों में भारत के निर्यात वृद्धि में 2011-12 में आई कमी काफी अधिक थी।

ग्लोबल ट्रेड अलर्ट के आँकड़े बताते हैं कि 2011 की तीसरी तिमाही में विकसित व उभरती अर्थव्यवस्थाओं में घोषित संरक्षणवादी कार्रवाइयां उतनी ही ऊँची रहीं जितनी कि 2009 के सबसे बुरे दौर में थीं। निर्यात-वृद्धि में कमी की चिंता को देखते हुए, सरकार ने जून 2012 में कई निर्यात-वर्धक उपाय घोषित किए जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ ब्याज संसहायकी (इंटरेस्ट सबभेंशन) और जीरो ड्यूटी एक्सपोर्ट प्रोमोशन कैपिटल गुड्स (ईपीसीजीज़) योजना का मार्च 2013 तक विस्तार और फोकस मार्केट स्कीम (एफएमएस), स्पेशल एफएमएस स्कीम और फोकस प्रॉडक्ट स्कीम के तहत कवरेज का विस्तार शामिल हैं।

2011-12 *के उत्तरार्ध में चालू खाता घाटे के वित्तपोषण को लेकर चिंता हुई*

II.6.11 2011-12 में भारत के सीएडी में हुई वृद्धि प्रधानत: व्यापार संतुलन (परिशिष्ट सारणी 18) के बिगड़ने के कारण थी। 2011-12 में व्यापारिक वस्तु व्यापार घाटा जीडीपी के 10.0 प्रतिशत की ऐतिहासिक ऊँचाई पर था। व्यापार घाटा जनित चालू खाता घाटे का वित्तपोषण पहली छमाही में आसानी से कर लिया गया, क्योंकि एफडीआई के मज़बूत आगम एवं बाह्य वाणिज्यिक उधार व व्यापार ऋण में बढ़ोतरी के कारण पूँजी आगम में उछाल आया था (परिशिष्ट सारणी 19)। तथापि 2011-12 की तीसरी तिमाही में न केवल सीएडी उल्लेखनीय रूप से बढ़ गया, बल्कि पूँजी आगम में भी नरमी आ गई थी क्योंकि बढ़ती वैश्विक अनिश्चितताओं नें वैश्विक निवेशकों के जोखिम उठाने के उत्साह को प्रभावित कर दिया। 2011-12 में सीएडी का स्तर 2010-11 से 70.1 प्रतिशत ऊँचा था (चार्ट II.42)।

II.6.12 संचयी आधार पर, 2011-12 के दौरान सीएडी, जीडीपी का 4.2 प्रतिशत रहा। निवल सेवा निर्यात में हुई बढ़ोतरी इतनी कम थी कि उससे 2011-12 में सीएडी पर उच्च व्यापार घाटे के प्रतिकूल प्रभाव की भरपाई नहीं हो सकती थी। सेवाओं के निर्यात में वृद्धि 2010-11 के 34.4 प्रतिशत की तुलना में 2011-12 में घटकर 7.1 प्रतिशत रही तथा सेवाओं के आयात की बात की जाए तो 2010-11 में इसमें 39.4 की वृद्धि हुई थी जबकि 2011-12 में 7.3 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई। प्रमुख निर्यात बाज़ारों में मंदी के बावजूद, सेवाओं के कुल निर्यात में 44 प्रतिशत की हिस्सेदारी

चार्ट II.39: भुगतान संतुलन के प्रमुख घटकों की प्रवृत्ति

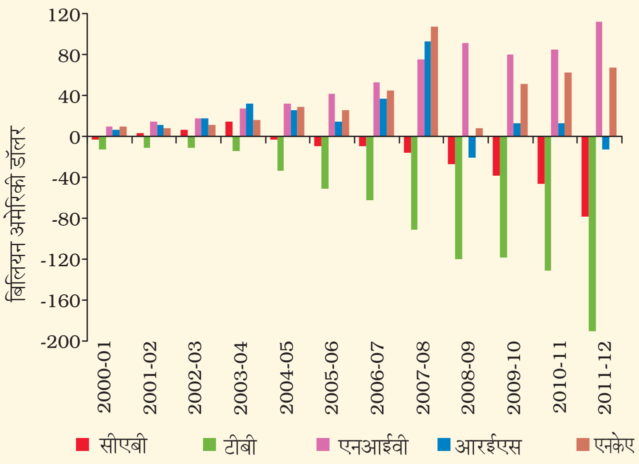

सीएबी: चालू खाता(करेंट अकाउंट)शेष; टीबी: व्यापार संतुलन; एनआईवी: निवल अदृश्य मदें; Δआरईएस: रिज़र्व में परिवर्तन; एनकेए: निवल पूँजी खाता

वाले सॉफ्टवेयर सर्विसेज़ की प्राप्तियों में ऊँची वृद्धि जारी रही (चार्ट II.40)।

दूसरी व तीसरी तिमाही में पूँजी आगम में गिरावट आई पर चौथी तिमाही में स्थिति सुधरी

II.6.13 2011-12 में पूँजी के आगम की प्रवृत्ति में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव देखने को मिला (चार्ट II.41)। पूँजी व वित्त खाते

चार्ट II.40: अदृश्य प्राप्तियों के प्रमुख घटकों की वृद्धि

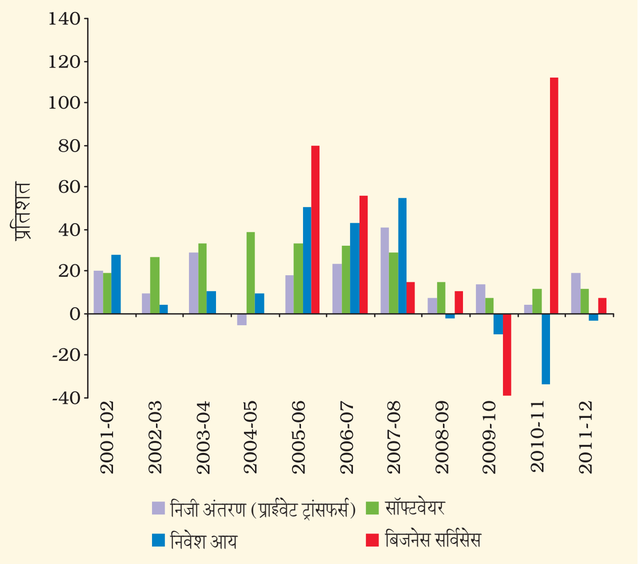

चार्ट II.41: पूँजी प्रवाह के प्रमुख घटकों की प्रवृत्ति (निवल)

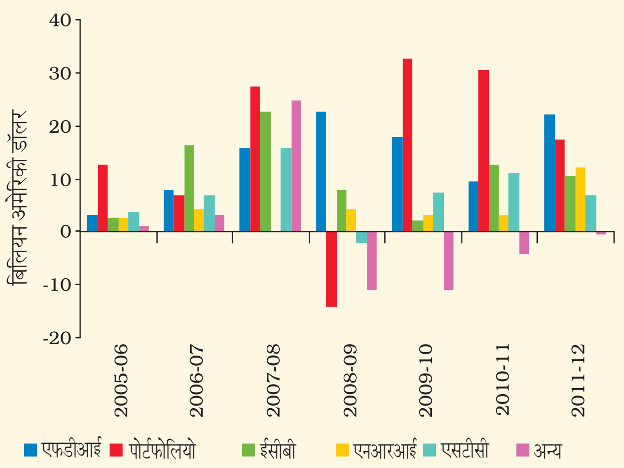

एफडीआई: विदेशी प्रत्यक्ष निवेश; पोर्टफोलियो: पोर्टफोलियो निवेश;
ईसीबी: बाह्य वाणिज्य उधार; एनआरआई: अनिवासी भारतीय जमाराशियां;
एसटीसी: अल्पावधि व्यापार ऋण

(आईएमएफ के भुगतान संतुलन मैन्यूअल के छठे संस्करण के अनुसार भुगतान संतुलन के पूँजी खाते का पुराना विभाजन) के अंतर्गत निवल आगम में पहली तिमाही में उछाल था। पूँजी आगम में कमी की शुरुआत तो दूसरी तिमाही में हो गई थी पर तीसरी तिमाही में यह कमी और अधिक हो गई जिसका मुख्य कारण व्यापार ऋण में निवल चुकौती और संविभाग आगम में कमी थी। देश में आने वाले एफ़डीआई के प्रत्यावर्तन (रिपैट्रिएशन) के बढ़ने और बाहर से लिए गए उधारों की उच्चतर चुकौती से भी बहिर्वाह में वृद्धि हुई। पूँजी अंतर्वाह में कमी आने के कारण तीसरी तिमाही में सीएडी के वित्तपोषण के लिए विदेशी मुद्रा भंडार का आहरण जरूरी हो गया (परिशिष्ट सारणी 20)। तीसरी तिमाही में उल्लेखनीय मात्रा में आहरण के कारण, विदेशी मुद्रा भंडार (मूल्यांकन को लेकर) मार्च 2011 के 304.8 बिलियन अमरीकी डॉलर से घटकर मार्च 2012 के अंत में 294.4 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया।

अंतरराष्ट्रीय निवेश स्थिति का बिगड़ना और अल्पावधि ऋण का बढ़ना नीतिगत चिंता का विषय बना हुआ है

II.6.14 वैश्विक वित्तीय परिस्थितियों व भारत की बाह्य स्थिति के बिगड़ने के चलते वर्ष के दौरान उठाए गए विभिन्न नीतिगत कदमों के फलस्वरूप ऋण को जन्म देने वाले प्रवाहों को प्रोत्साहन मिला जैसे एफआईआई द्वारा ऋण लिखतों में निवेश, एनआरआई जमाराशियां में निवेश एवं बाह्य वाणिज्यिक उधार। चालू खाता घाटे के वित्तपोषण के नजरिये से तो ये आगम ठीक रहे, परंतु इनके परिणामस्वरूप भारत का बाह्य ऋण भी बढ़ा। मार्च 2011 के अंत के स्तर की तुलना में मार्च 2012 में भारत के बाह्य ऋण की कुल वृद्धि में, बाह्य वाणिज्यिक उधारियों, एनआरआई जमाराशियों और व्यापार ऋण का समग्र रूप में 77 प्रतिशत का योगदान था (परिशिष्ट सारणी 21)।

II.6.15 ऋण प्रवाहों पर अधिकाधिक निर्भरता और सीएडी के वित्तपोषण हेतु विदेशी मुद्रा भंडार के आहरण के कारण, बाह्य क्षेत्र की संवेदनशीलता दर्शाने वाले संकेतकों में 2011-12 में काफी खराब स्थिति देखने को मिली। आयात का रिज़र्व कवर, कुल बाह्य ऋण की तुलना में अल्पकालिक ऋण का अनुपात, कुल ऋण की तुलना में विदेशी मुद्रा भंडार का अनुपात और ऋण चुकौती अनुपात वर्ष के दौरान बिगड़े (चार्ट II.42)। 2011-12 में भारत की अंतरराष्ट्रीय निवल निवेश स्थिति भी कमज़ोर हुई।

ऐसे प्रवाहों को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है जो ऋण न पैदा करें

II.6.16 2011-12 में सीएडी के वित्तपोषण में ऋण प्रवाहों पर अधिक निर्भरता को देखते हुए, नीतिगत प्रयासों से ऐसे प्रवाहों को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है जो ऋण न पैदा करें ताकि भारत की बाह्य देयताओं की संरचना सुविधाजनक स्तर पर रहे। इस संदर्भ में, बीमा के अलावा पेंशन क्षेत्र में सुधार आवश्यक है। बीमा, रीटेल, उड्डयन और शहरी बुनियादी क्षेत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रवाह को और बेहतर करने की जरूरत है।

चार्ट II.42: बाह्य ऋण संकेतक

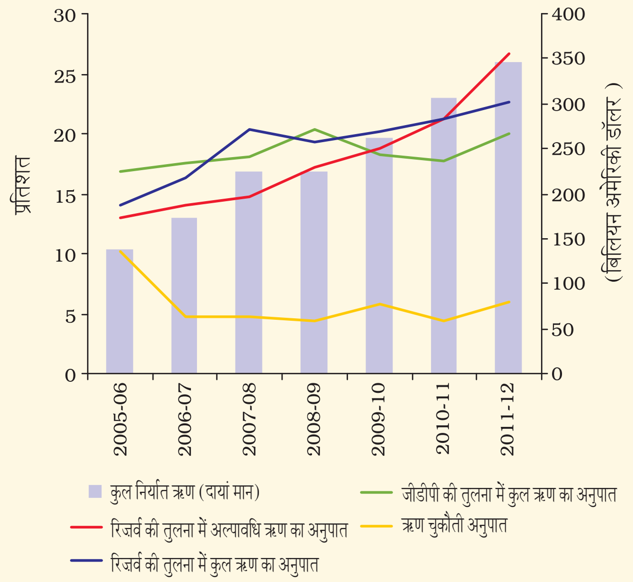

II.6.17 इस संदर्भ में, मल्टी-ब्रैंड रीटेल में 51 प्रतिशत तक एफडीआई की अनुमति और सिंगल-ब्रैंड रीटेल में एफडीआई पर सभी सीमाओं को हटाकर भारतीय संगठित रीटेल क्षेत्र को उदार बनाने के प्रस्ताव पर 2011-12 के दौरान गहन चर्चा की गई। यद्यपि विभिन्न हितधारकों के एकमत न होने के कारण मल्टी ब्रैंड रीटेल संबंधी प्रस्ताव को स्थगित रखा गया है, सरकार ने जनवरी 2012 में सरकारी अनुमोदन मार्ग के तहत सिंगल ब्रैंड रिटेलिंग में एफडीआई सीमा को 51 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया। एफडीआई मल्टी ब्रैंड रिटेलिंग के मामले में आशंकाओं का मुख्य कारण प्रतियोगियों को ख़त्म करने के नीयत से रखी गई कीमतों या लागत से कम कीमतें रखने के तौर-तरीके से है जो कि बड़े रीटेल चेन्स कर सकते हैं। कीमतें तय करने के ऐसे तरीके छोटे किराना भंडारों को बाज़ार से बाहर कर सकते हैं और छोटी दुकानों के न होने पर एकाधिकार वाली स्थिति बनेगी। इन आशंकाओं के विपरीत अंतरराष्ट्रीय अनुभव समग्र तौर पर यह बताता है कि रिटेलिंग में एफडीआई के आने से प्रतियोगिता बढ़ती है। अनुभवजन्य साक्ष्य भी बताते हैं कि रीटेल के मैदान में स्पर्धा के बढ़ने से कीमतें घटती हैं जिससे उपभोक्ताओं का ही कल्याण अधिक होता है और सबसे ज्यादा फायदा कम आय वाले परिवारों को होता है। पृष्ठभूमि के बुनियादी ढाँचे (बैक एंड इन्फ्रास्ट्रक्चर) जैसे कृषि व पोल्ट्री उत्पादों के लिए कोल्ड स्टोरेज आदि में निवेश को बढ़ाकर आपूर्ति श्रृंखला (सप्लाइ चेन) के प्रबंधन को बेहतर करने में एफडीआई रीटेल विशेष मददगार साबित हो सकता है। पिछले दो दशकों में पूर्वी एशिया के कई देशों को एफडीआई में रीटेल से फायदा हुआ है। रिटेलिंग और होलसेलिंग चीन में एफडीआई आगम के एक बड़े क्षेत्र के रूप में भी उभरा है।

II.6.18 यह महत्त्वपूर्ण है कि हाल के वर्षों में, एफडीआई के बहिर्वाह के बढ़ने का ट्रेंड वैसा है जैसा कि कई दूसरी उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में देखा गया है। 2011-12 में भारत से बाहर जाने वाले एफडीआई का स्टॉक 112 बिलियन अमेरिकी$ को छू गया। एक ओर जहाँ, इन निवेशों के चलते प्रतियोगिता के बढ़ने व वृहत्तर बाज़ार तक पहुँचने के फ़ायदे मिलते हैं, वहीं समग्र एफ़डीआई नीति में घरेलू निवेश के हितों के लायक संतुलन को बनाए रखना है। इसके अलावा, भारतीय कंपनियों द्वारा विदेश स्थित अपने संयुक्त उपक्रमों (ज्वाइंट वेंचर्स)/ पूर्ण स्वामित्व वाली अनुषंगी कंपनियों के नाम गारंटी जारी किए जाने में लगातार/ घातांक वृद्धि (एक्सपोनेंशियल राइज़), संबंधित बैंकों एवं स्वयं कंपनियों के लिए भी चिंता का एक संभावित कारण हो सकता है। इस पर कड़ी नज़र रखने की जरूरत है।

वैश्विक मुद्रा उतार-चढ़ाव और घरेलू समष्टि आर्थिक कमज़ोरी के कारण रुपए का मूल्यह्रास

II.6.19 वित्तीय वर्ष 2011-12 के अंतिम चार महीनों में अधिकांशतः एक दायरे में रहने के बाद वैश्विक अनिश्चितता एवं घरेलू समष्टि आर्थिक कमज़ोरी के कारण 2001 के अगस्त से मध्य दिसंबर तक रुपए में 17 प्रतिशत तक का मूल्यह्रास हुआ। एस एंड पी द्वारा अमेरिकी अर्थव्यवस्था की रेटिंग में कमी, गहराते यूरो संकट, और विश्वसनीय समाधान प्रक्रिया के अभाव ने वैश्विक वित्तीय बाज़ारों में जोखिम की भूख घटा दी और निवेशकों ने डॉलर को सुरक्षित आस्ति मानकर उस ओर पलायन किया। नतीजन, जब यूएस डॉलर का मूल्य बढ़ा तो अधिकांश मुद्राएं दबाव में आ गईं जिसमें येन ही एक उल्लेखनीय अपवाद रही (चार्ट II.43)। रूस के सिवाय, सामान्यतः, चालू खाता घाटे वाले देशों में उन देशों की तुलना में तीव्रतर मूल्यह्रास हुआ जिनके यहाँ चालू खाता अधिशेष (करेंट अकाउंट सरप्लस) की स्थिति थी।

II.6.20 मुद्रा बाज़ारों में अत्यधिक दबावों को देखते हुए, रिज़र्व बैंक ने डॉलर की बिक्री के जरिये विदेशी मुद्रा बज़ार में हस्तक्षेप किया। रुपए को स्थिर करने के लिए बैंक ने पूँजी खाते से भी संबंधित कई कदम उठाए जैसे रुपए में मूल्यवर्गित एनआरआई जमाराशियों

चार्ट II.43: डॉलर की तुलना में प्रमुख ईडीई मुद्राओं में उतार-चढ़ाव

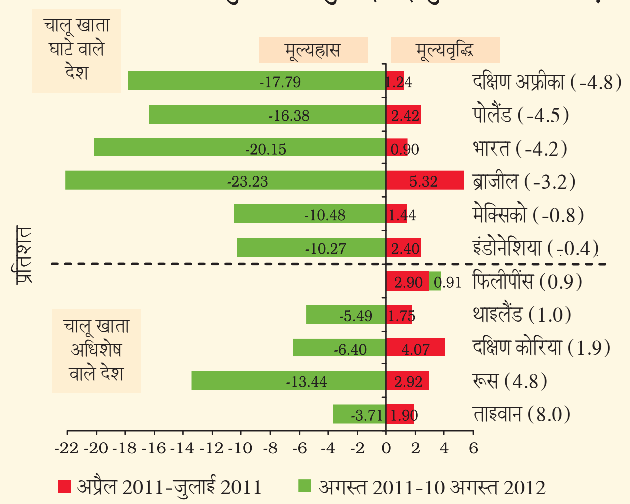

*: अगस्त 2011 की तुलना में 22 जून 2012 को विनिमय दर उतार-चढ़ाव का हिसाब । कोष्टक के आंकड़े वर्ष 2012 में डब्ल्यूईओ द्वारा आकलित/अनुमानित सीएडी के हैं , सिवाए भारत के मामले में, जिसके अक्टूबर -दिसंबर 2011 का वास्तविक आँकड़ा-बिंदु दिया गया है।

पर ब्याज दरों से विनियमन हटाना और 3-5 वर्ष की औसत परिपक्वता वाले ईसीबी के लिए संपूर्ण लागत सीमा को बढ़ाना आदि। एफआईआई हेतु दीर्घावधि इंफ्रास्ट्रक्चर बॉन्ड्स (अमेरिकी $ 25 बिलियन की कुल सीमा के भीतर अमेरिकी $ 5 बिलियन तक) की अवरुद्धता अवधि (लॉक-इन पीरियड) को घटाकर एक वर्ष कर दिया गया और सरकारी प्रतिभूतियों व कॉरपोरेट बॉन्ड्स, प्रत्येक में एफआइआई के लिए सीमा में अमेरिकी $ 5 बिलियन तक की वृद्धि करते हुए इन्हें क्रमशः अमेरिकी $ 20 बिलियन अमेरिकी $ 45 बिलियन किया गया ।

II.6.21 विदेशी मुद्रा बाज़ार में डॉलर की आपूर्ति में सुधार लाने और सट्टे/अटकलों (स्पेक्यूलेशन) पर लगाम कसने के लिए लगातार उठाए गए कदमों के परिणामस्वरूप, फरवरी 2012 की शुरुआत में रुपया 11 प्रतिशत ऊपर चढ़ा परंतु मई- 2012 के अंत तक उसमें 13 प्रतिशत से अधिक की गिरावट आ गई ।

II.6.22 व्यापार घाटे के बढ़ने, पूँजी प्रवाहों- विशेषत: एफआईआई आगम -के सूखने और यूरो से ग्रीस के बाहर निकलने की आशंकाओं के कारण रुपये पर नये सिरे से दबाव पड़ा (चार्ट II.44)। आगम को बेहतर करने और साथ ही रुपये में अस्थिरता को कम करने के लिए रिज़र्व बैंक ने मई और जून 2012 में अतिरिक्त कदम उठाए। मई 2012 में निम्नलिखित कदम उठाए गए: एफसीएनआर(बी) जमाराशियों पर ब्याज दर सीमा में वृद्धि, विदेशी मुद्रा में निर्यात ऋण पर ब्याज दर सीमा का विनियंत्रण(डिरेग्यूलेशन), ईईएफसी खाते के 50 प्रतिशत शेष का रुपया शेष में परिवर्तन का आदेश।

चार्ट II.44: भारत में विनिमय दर का लचीलापन

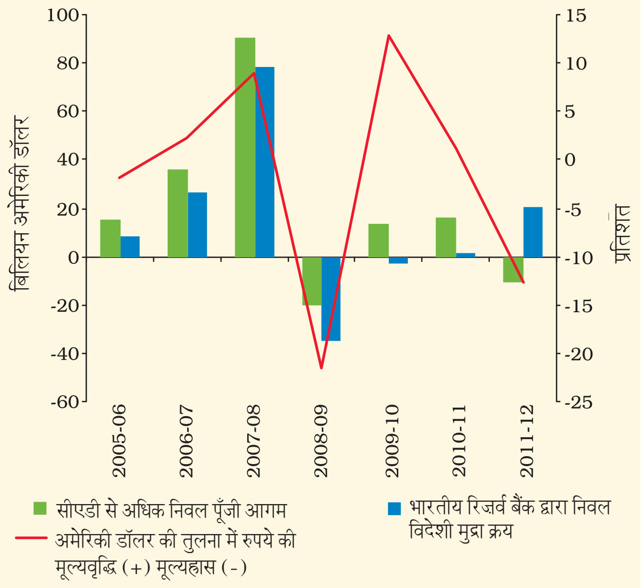

II.6.23 जून 2012 में भारत सरकार के साथ परामर्श करके कुछ और कदम उठाए गए जिसमें निम्नलिखित भी हैं: पूँजीगत व्यय संबंधी रुपया ऋण के भुगतान हेतु भारतीय कंपनियों को अनुमोदन मार्ग के तहत ईसीबी की अनुमति, सरकारी-प्रतिभूतियों में एफआईआई निवेश की सीमा में 5 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वृद्धि करके इसे 20 बिलियन अमेरिकी डॉलर किया जाना, जिन म्यूचुअल फंडों की कम से कम 25 प्रतिशत आस्तियां बुनियादी क्षेत्र में हैं उनमें पात्र विदेशी निवेशक की उप-सीमा के अंतर्गत निवेश की अनुमति और सरकारी-प्रतिभूतियों के लिए निवेशक आधार में विस्तार जिससे कुछ दीर्घावधि निवेशक वर्गों को शामिल किया जा सके जैसे सोवरिन वेल्थ फंड्स, इंश्योरेंस फंड्स और पेंशन फ़ंड्स। इन उपायों के बावजूद, 2012-13 में अब तक (14 अगस्त 2012 तक) रुपये में 8.1 प्रतिशत की गिरावट देखी गई। 6-, 30-, और 36- मुद्रा समूहों पर आधारित आरईईआर (रीर) में भी गिरावट आई (परिशिष्ट सारणी 13) ।

भारत का विदेशी मुद्रा भंडार घटा

II.6.24 2011-12 की दूसरी छमाही में भारी आहरण के कारण 2011-12 में भंडार में कमी आई। ऋण की तुलना में विदेशी मुद्रा भंडार का अनुपात भी घटा। तथापि, भंडार की पर्याप्तता को देखें तो विभिन्न वैकल्पिक मानकों के लिहाज से भारत की स्थिति अभी भी सुविधाजनक बनी हुई है। पारंपरिक संकेतकों को लें तो, अनुभव कहता है कि कम से कम 3 महीनों के आयात के लायक भंडार जरूरी हैं, जबकि वर्तमान भंडार 7.1 महीनों के आयात को कवर कर सकते हैं और इस प्रकार इसमें स्थिति सुविधाजनक है। इसी प्रकार, अल्पकालिक ऋण की तुलना में रिज़र्व का स्तर भी 377 प्रतिशत पर है जो कि ग्रीनस्पैन-गोइडोट्टी नियम के अंतर्गत बताए 100 प्रतिशत के स्तर से काफी अधिक है। अप्रैल 2012 की अपनी स्टाफ़ रिपोर्ट में, आईएमएफ ने कहा है कि भारत के रिज़र्व का कवरेज पर्याप्त है (2011 की सकल बाह्य वित्तपोषण आवश्यकताओं का 1.8 प्रतिशत) और बाह्य ऋण, जो जीडीपी का लगभग 20 प्रतिशत रहा है, दूसरे प्रमुख उभरते बाज़ारों की तुलना में अच्छा है।

II.6.25 आगे, कमज़ोर रुपया, अन्य नीतिगत कार्रवाइयों की मदद से चालू खाता घाटे पर लगाम कसने में मदद कर सकता है। तथापि,

बाह्य क्षेत्र के परिदृश्य पर लगातार निगरानी रखने की जरूरत है ताकि मूल्य से प्रभावित नहीं होने वाले आयात -जैसे तेल व स्वर्ण- व्यापार घाटे पर प्रतिकूल प्रभाव न डाल पाएं तथा सीएडी संभाले जा सकने लायक दायरे में रहे और भारत के विदेशी मुद्रा भंडार पर बोझ न बने। समष्टि आर्थिक व बाह्य क्षेत्र की नीतियों को और अधिक विवेकपूर्ण होने की ज़रूरत है ताकि निकट भविष्य में बाह्य क्षेत्र के जोखिमों को दूर रखा जा सके। विशेषत: इसलिए कि, समय के साथ ऋण पैदा करने वाले प्रवाह बढ़ गए हैं और बाहरी आघातों से अर्थव्यवस्था के आहत होने की संभावनाएं बढ़ गई हैं। चूँकि वैश्विक आर्थिक व वित्तीय स्थितियां बहुत अनिश्चित बनी हुई हैं, इसमें आत्मसंतोष के लिए कोई स्थान नहीं है। भारत के व्यापार एवं चालू खाते में बढ़ते असंतुलन से उत्पन्न कमज़ोरियों पर नीति निर्माताओं को ध्यान देना होगा और ऐसा नीतिगत व कारोबारी परिवेश तैयार करना होगा जिससे विदेशी निवेशकर्ताओं का विश्वास बढ़े।